योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

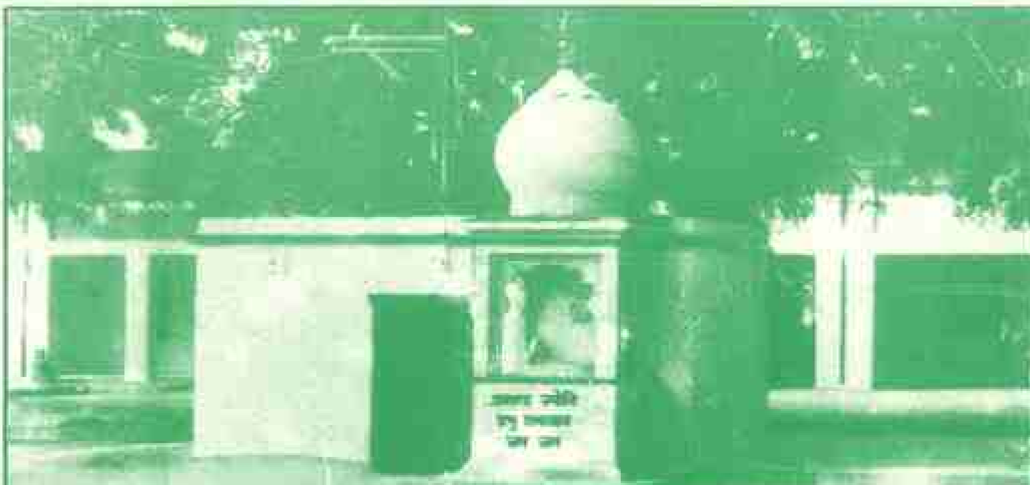

र्ष 32 दिसम्बर, 1999 अंक 9

ी सिद्धगुफा प्रकाशन

,वाई (आगरा)-283 202

SIDDHYOG
MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा
चन्द्रशेखर 'दिव्य'
आचार्य चन्द्रहास शर्मा
राजेश कुमार श्रीवास्तव

एक प्रति	रु० 8.00
वार्षिक शुल्क	रु० 75.00
द्विवार्षिक	रु०140.00
आजीवन	रु०750.00

इस अंक में

- शान्ति पाठ 1
- अमृत कण 2
- विशेष लेख
  अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
- सम्पादकीय 7
- गुरु पूजन क्यों और कैसे
  आचार्य चन्द्रहास शर्मा 9
- किमस्ति योगः
  श्री द्वारका प्रसाद शर्मा 13
- मृत्यु दण्ड से विधवापुत्र-रक्षा
  केशव देव उपाध्याय 23
- योग ही परम श्रेयस्कर है।
  डा० स्वामी केशवाचार्य 27
- पानी पीओ छान के गुरु बनाओ जान के
  अंशुमान देव मालवीय 31
- सद्गुरू प्रदत्त साधना क्रम
  डा० विजय सिंह 32
- कला के उद्भव में सिद्धयोग का योगदान
  कु० राजकिशोरी सिंह 34
- सिद्धयोग
  स्वामी पुरुषोत्तमतीर्थ 37
- योग में शब्द-योग
  अशोक दिग्विजय 39

सिद्धयोग

योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 32 अंक 9	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्, मर्त्यो मृत्योर्मूख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः। तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान योगशास्त्रोपदेशान्, कल्याणानां भवत् महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	दिसम्बर 1999

शान्ति पाठ

ॐ आप्यायन्तु ममांगानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोतमथो वलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोत्, अनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु, ते मयि सन्तु।

(केनोपनिषद्)

भावार्थ

हे परमात्मन् ! मेरे सारे अंग, वाणी, नेत्र, श्रोत्र आदि सभी कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ, प्राणसमूह, शारीरिक और मानसिक शक्ति तथा ओज—सब पुष्टि एवं वृद्धि को प्राप्त हों। उपनिषदों में सर्वरूप ब्रह्म का जो स्वरूप वर्णित है, उसे मैं कभी अस्वीकार न करूँ और वह ब्रह्म भी मेरा कभी परित्याग न करे। मुझे सदा अपनाये रखे। मेरे साथ ब्रह्म का और ब्रह्म के साथ मेरा नित्य सम्बन्ध बना रहे। उपनिषदों में जिन धर्मों का प्रतिपादन किया गया है, वे सारे धर्म, उपनिषदों के एकमात्र लक्ष्य परब्रह्म परमात्मा में निरन्तर लगे हुए मुझ साधक में सदा प्रकाशित रहें, मुझ में नित्य निरन्तर बने रहें और मेरे त्रिविध तापों की निवृत्ति हो।

अमृत कण

यथोर्णनाभि: सृजते गृह्णते च
यथा पृथिव्यामोषधय: सम्भवन्ति।
यथा सत: पुरुषात्केशलोमानि
तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्।।

मुण्डकोपनिषद् १/१/७

जिस प्रकार मकड़ी जाले को बनाती है और निगल जाती है तथा जिस प्रकार पृथ्वी में नाना प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न होती हैं और जिस प्रकार जीवित मनुष्य से केश और रोये उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार अविनाशी परब्रह्म से यहाँ इस सृष्टि में सब कुछ उत्पन्न होता है।

* * *

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य
इमॉंल्लोकानीशत ईशनीभि:।
प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपा:।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३/२)

जो अपनी स्वरूपभूत विविध शासन–शक्तियों द्वारा इन सब लोकों पर शासन करता है वह रुद्र एक ही है। इसलिए विद्वान पुरुषों ने जगत् के कारण का निश्चय करते समय दूसरे का आश्रय नहीं लिया, वह परमात्मा समस्त जीवों के भीतर स्थिर हो रहा है। सम्पूर्ण लोकों की रचना करके उनकी रक्षा करने वाला परमेश्वर प्रलयकाल में इन सबको समेट लेता है।

* * *

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं
परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।
सहस्त्ररश्मि: शतधा वर्तमान:
प्राण: प्रजानामुदयत्येस सूर्य:।।

(प्रश्नोपनिषद् १/८)

सम्पूर्ण रूपों के केन्द्र, सर्वज्ञ, सर्वाधार, प्रकाशमय, तपते हुए किरणों वाले सूर्य को अद्वितीय बतलाते है। यह सहस्त्रों किरणों वाला सूर्य सैंकडों प्रकार से वर्तता हुआ समस्त जीवों का प्राण होकर उदय होता है।

विशेष लेख

ध्यान योग और क्लिष्टाक्लिष्ट वृत्तियाँ

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

मैंने तुम्हें कई बार समझाया है कि **ध्यानहेयास्तद् वृत्तय:** के नियमानुसार हमारी क्लिष्ट और अक्लिष्ट जितनी भी वृत्तियाँ है वह योग ध्यान से ही हटाई जा सकती है। क्लिष्टवृत्ति दुःखरूप हैं संसार की ओर ले जाती है अधर्म एवं तम की ओर ले जाती है। अक्लिष्ट वृत्ति शुभ वृत्ति को कहते है। यह ज्ञान एवं वैराग्य की ओर ले जाती है। वृत्तियों के विषय मे यह जानना आवश्यक है कि 'क्लिष्टाच्छिद्रेष्वप्यक्लिष्टा **भवन्ति अक्लिष्ट छिद्रेषु क्लिष्टा इति**। अर्थात् क्लिष्ट वृत्तियों के बीच–बीच में अक्लिष्ट वृत्तियाँ आ जाया करती हैं और अक्लिष्ट के बीच में क्लिष्ट वृत्तियाँ रहा करती है। उदाहरण के लिए इसे ऐसा समझ लो। मानसिंह नाम का डाकू मध्य भारत में मशहूर हुआ है। क्लिष्ट वृत्तियों के कारण उसकी डाकू की प्रवृत्ति बनी किन्तु अक्लिष्ट वृत्तियों के बीच–बीच में रहने के कारण वह पुण्य के कार्य भी किया करता था। वह विद्यालयों की स्थापना मे पैसे लगाता था, कुंए तालाब खुदवाता था, अन्न क्षेत्र खोलता था तथा अनेक प्रकार से गरीबों का मददगार भी था। इस प्रकार से वह धन का उपयोग कुछ पुण्य के कार्यों में भी करता था। अस्तु। हम लोग इन्द्रियों के बाह्य विषयों को ही ग्रहण करते है। यह सारा बाह्य भोग है हमें भीतर का ज्ञान हो नहीं पाता। अच्छी व बुरी दोनों प्रकार की वृत्तियों को निपटाने के दो क्रम है। एक तो है **'ध्यान हेयास्तद्वृत्तय:'** के नियम से हम ध्यानयोग के अभ्यास से वृत्ति को हटा लेते है। ध्यान योग के अभ्यास से इन वृत्तियों का स्थूल रूप तो खत्म होता है किन्तु वृत्तियाँ सूक्ष्म रूप में रह जाती है वे **'ते प्रति प्रसवहेया: सूक्ष्मा'** के अनुसार समाधि अथवा लयता को प्राप्त होने पर समाप्त हो जाती हैं। ध्यान योग का अभ्यास क्रम धारणा, ध्यान और समाधि के अभ्यास से बनता है। मैं तुम्हें धारणा, ध्यान के विषयों में रोज–रोज ही समझाता रहता हूँ। **'देशबन्ध चित्तस्य धारणा'** अपने चित्त को एक लक्ष्य स्थान पर जमाना धारणा कहलाता है। बाह्य और आभ्यन्तर भेद से धारणा दो प्रकार का होता है। बाह्य धारणा में जैसे गीता में भगवान ने **'सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वदिशश्चानवलोकयन्'** के अनुसार हठयोग की विधि से धारणा का उपदेश दिया है। किन्तु इस धारणा के लिये भी पहले त्राटक का अभ्यास करना आवश्यक हो जाता है। त्राटक हठयोग का विषय है। वासना भोगी हठयोग का अधिकारी नहीं होता कोई जितेन्द्रिय पूर्ण ब्रह्मचारी एवं संयमी को ही हठयोग का अभ्यास करना चाहिये। नासिकाग्र पर धारणा करने से पहले त्राटक का अभ्यास करना होता है। त्राटक के अभ्यास में एक काला बिन्दु बनाकर उसे बार–बार देखना होता है। धीरे–धीरे अभ्यास बढ़ाते–बढ़ाते उस काले बिन्दु के चारों ओर प्रकाश दिखाई देने लगता है। देखते–देखते काला बिन्दु भी दीखना खत्म हो जायेगा

केवल रोशनी ही रह जायेगी और वह रोशनी आंखों में समा जायेगी। जो उसे दिव्य दृष्टि वाली बना देगी। हमने उस प्रकाश वाली आँखों से नासिकाग्र भाग को देखना शुरू किया धीरे–धीरे वह रोशनी मूर्धा ज्योति तक आ गई इसका परिणाम होगा **'मूर्ध ज्योतिषि सिद्ध दर्शनम्'** अर्थात् मूर्धा ज्योति के दीख जाने पर सिद्धों के दर्शन होने लगते है और सिद्धों का दीखना खाली नहीं जाता। वह सामने आने पर साधक को मनोऽभिलषित पदार्थ दे देते हैं वरदान आदि दिया करते हैं। सिद्धों के संकल्प से योगी सहस्रार तक पहुँच जाता है इस प्रकार से उसकी निर्बीज समाधि होने लगती है। यह बाह्य धारणा का फल है यह बात अलग है कि हम बाह्य धारणा को त्राटक तक सीमित रखें या आगे बढ़ायें।

योग दर्शन में **'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्'** का सिद्धान्त आता है। इसका तात्पर्य है कि सूर्य में संयम करने से योगी को समस्त भुवनों का ज्ञान हो जाता है किन्तु यह संयम स्थूल सूर्य में नहीं करना होता। हमारी आंखे अग्नि तत्व की बनी है और सूर्य उस अग्नि तत्व का केन्द्र है। नियमानुसार बड़ी शक्ति छोटी शक्ति को अपने में मिला लेती है। यदि हम स्थूल सूर्य पर अपनी इन आंखों से देखना प्रारम्भ करेंगे तो हम अन्धे हो जायेंगे। कुछ दिन पूर्व चण्डीगढ़ में किसी व्यक्ति ने इसी प्रकार से सूर्य पर संयम करना प्रारम्भ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि वह बिलकुल अन्धा हो गया। उसकी आंखों की रोशनी जाती रही। योगी अपने संयम बल से सूर्य में संयम करता है इस प्रकार लयता प्राप्त करके भुवन ज्ञान प्राप्त करता है। बनारस में हमारा एक साधु रहता है उसे श्री प्रभु जी ने पाँच रुपये महीने पर भोजनादि बनाने के लिये रख लिया था। बाद में हमारे जमाने में ही उसने श्री प्रभु जी के सामने ही त्राटक का अभ्यास करना शुरू कर दिया था। श्री प्रभु जी कृपा एवं शक्तिपात् उसे प्राप्त हो गया। बाद में वह बनारस चला गया। हमारा एक बच्चा विष्णु है वह बतलाता था कि वह साधु त्राटक के परिणाम स्वरूप दीवार के उस पार आने जाने वाले व्यक्तियों को भी देख लेता है। यह शक्ति उसको त्राटक के अभ्यास से प्राप्त हुई। उसकी आंखे तेजोमय हो गई थी। ऐसा व्यक्ति उन आंखों से जमीन के भीतर सभी वस्तुओं को देख लेने में समर्थ हो जाता है। अस्तु। दूसरी धारणा होती है आभ्यन्तर धारणा। मूलाधार चक्र, नाभि चक्र आदि–आदि स्थानों पर गुरूपदिष्ट मार्ग से धारणा का अभ्यास किया जाता है। धारणा का अभ्यास करते–करते साधक ध्यान की स्थिति में पहुँच जाता है **'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्'** अर्थात् लक्ष्य स्थान पर इष्ट का बराबर दीखते रहना। एकता नता–सदृश प्रवाह तैल की धारा के समान वृति का जमा रहना ध्यान कहलाता है। ध्यान की अवस्था में ध्याता अर्थात् ध्यान करने वाला ध्यान प्रक्रिया तथा ध्येय (लक्ष्य) इन तीनों का ज्ञान रहता है। ध्यान का अभ्यास करते–करते समाधि की अवस्था आ जाती है। समाधि का अर्थ **'तदेवार्थ मात्रनिर्भासम स्वरूप शून्यमिव समाधि'** अर्थात् जिसका हम ध्यान कर रहे है वही वही दीखता रहे अपना स्वरूप भी समाप्त जैसा हो जाये उसे समाधि कहते है। जैसे मान लिया हम गणेश जी का ध्यान कर रहे हैं अवस्था ध्यान करते–करते जब समाधि अवस्था आ जायेगी तो उस अवस्था में हम अनुभव करेंगे **'गणपतिरहम्'** अर्थात् मैं ही गणपति हूँ **शिवोऽहम्'** मैं ही शिव हूँ। मै स्थान–स्थान पर लोग मेरी पूजा अर्चना कर रहे है। धारणा ध्यान तथा समाधि के

अंतरंग हैं। क्लिष्टाक्लिष्टि दोनों प्रकार की वृत्ति को ध्यान के द्वारा हटाया जा सकता है। ध्यान योग का अभ्यास करने वाले के शरीर के जो भोग स्थूल शरीर पर आने वाले होते हैं वह ध्यान के प्रभाव से सूक्ष्म में ही कट जाते हैं। इनमें कुछ ऐसे भी दृढ़ संस्कार होते हैं जो ध्यान में भी नहीं कट पाते व प्रतिप्रसव अर्थात् समाधि की पराकाष्ठा में ही कटते हैं। उसी स्थिति को प्राप्त हुये योगी के विषय में कहा जाता है—

भिद्यते हृदयग्रन्थि: छिद्यते सर्वसंशया:।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

इस समाधि की पराकाष्ठा को पा जाने पर योगी के समस्त कर्म संस्कारों का क्षय हो जाता है। पुन: कोई संस्कार फिर नहीं बनता। इसी को परावर दर्शन कहते हैं। अस्तु। **'ध्यान हेयास्तद्वृत्तय:।'** के अन्तर्गत मैंने तुम्हें रामरती का उदाहरण दिया था। रामरती के विषय में तुम सब जाते ही हो। उसके जीवन में बहुत ही क्लिष्टवृतियों का संस्कार चल रहा था। किन्तु आनन्दकन्द श्री प्रभु जी की कृपा से उसकी सब क्लिष्ट वृत्तियाँ समाप्त हो गई। श्री प्रभु जी के शक्तिपात से उनका ध्यान योग में तत्काल प्रवेश हो गया और योगिनी बन गई। यद्यपि प्रभु जी ने उन्हें तत्व विजयी तो नहीं बनाया, उसे वन वासिनी तो बना ही दिया। इसी प्रकार की एक और घटना श्री प्रभु जी के चरणों में घटित हुई थी। एक बार श्री प्रभु जी के पास अमृतसर से एक देवी लाई गई। वह पर पुरुष में परमासक्त थी। उसके परिवार वालों ने श्री प्रभु जी से प्रार्थना की कि ऐसी कृपा करें कि इसका मन बदल जाये। श्री प्रभु जी ने उससे पूछा—क्या तू भगवान श्री कृष्ण का ध्यान करेगी ! वह कहने लगी नहीं, मुझे राम कृष्ण आदि से क्या वास्ता ? प्रभु जी ने कहा— तुझे सबसे अच्छा कौन लगता है ? उसने कहा— मुझे अपने प्रेमी अच्छे लगते हैं। श्री प्रभु जी ने कहा— अच्छा ! ठीक है तू अपने हृदय में उसी का ध्यान कर ! ऐसा कहकर प्रभु जी ने उसे उसी व्यक्ति के ध्यान में बिठा दिया। देखो ! सब के हृदय में परमात्मा का वास है। ध्यान करते–करते उसे ऐसा लगा कि उसके प्रेमी बहुत ही सुन्दर रूप में दिखाई दे रहे हैं। एक दो दिन इसी प्रकार ध्यान रखते हुये उसे लगा कि उस रूप में भगवान कृष्ण का दर्शन प्रारम्भ हो गया। वह उन्हीं में तल्लीन रहने लगी। कुछ दिन के बाद श्री प्रभु जी ने उससे पूछा— देवी ! क्या तू उस आदमी से अब भी प्यार करेगी ? वह कहने लगी—प्रभु जी ! अब तो मैं उसको देखना भी नहीं चाहती हूँ। आपने मुझे वह वस्तु दे दी है जिसके आगे सारा संसार तुच्छ लगता है। इस प्रकार से पर पुरुष में आसक्त उस महिला का मन **'ध्यान हेयास्तद्वृत्तय:'** के अनुसार ध्यान के प्रभाव से बिल्कुल बदल गया।

मैंने तुम्हें कई बार पहले बताया है कि जब मन को भीतर के दिव्य रस प्राप्त होने लगते हैं तो बाहर के संसार से उसका मन स्वत: ही हटता चला जाता है। यह एक स्वाभाविक नियम की बात है। श्री प्रभु जी अपनी पद्धति के अनुसार अपने बच्चों (साधकों) को विचारानुगत समाधि के अन्तर्गत लोक लोकान्तर दिखा दिया करते थे ताकि स्वर्ग के भोगों के प्रति साधक की रूचि समाप्त हो जाये। एक बार श्री प्रभु जी ध्यान में भाई गोपालानन्द जी को इन्द्रलोक ले गये। वहाँ अपसराओं का नृत्य हो रहा था। ब्रह्मचारी जी नृत्य आदि देखने में रूचि लेने लगे।

इतने में श्री प्रभु जी अन्तर्ध्यान हो गये। ब्र. गोपालानन्द जी कहने लगे—प्रभु जी। आप कहाँ चले गये हैं श्री प्रभु जी पुनः प्रकट होकर कहने लगे तू इनमें मन लगा रहा था इसलिये हम अन्तर्धान हो गये। तू इन्हें देखने के लिये देख किन्तु मन मत लगा। **ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः** के उदाहरण के रूप में साईदास और मंगामल का चरित्र सामने रख सकते हैं। साईदास के भी बहुत क्लिष्ट कर्म थे। बहुत ही बिगड़ा हुआ व्यक्ति था। शराब वह पीता था व्यभिचार तथा अन्य कई दुर्गुणों से बुरी तरह ग्रस्त था उसकी   उसे श्री प्रभु जी के चरणों में लाई। श्री प्रभु जी की शक्तिपात को पाकर उसका ध्यान जमने लगा। सारा–सारा दिन ध्यान में ही बैठा रहता था। इसी प्रकार से अमृतसर का रहने वाला मंगामल था उसका भी उदाहरण मैं तुम्हें प्रायः बताता ही रहता हूँ। वह भी लाहौर की किसी महिला में आसक्त था। उसके संस्कार इस प्रकार के थे। कि यदि वह उस महिला के कहने में आ जाता तो वह उससे पैसे व सामान लेकर बाद में जान से मार देती किन्तु श्री प्रभु जी ने ठीक समय पर उसे सम्हाल लिया उसकी रक्षा हो गई। श्री प्रभु जी की शरणागति पाकर वह भी ध्यान योग में प्रवेश पा गया और जीवन बिलकुल बदल गया। तुलसीदास, सूरदास, रसखान आदि–आदि भी काम प्रवृत्ति के लोग थे। किन्तु प्रभु कृपा पाकर ध्यान योग के प्रभाव से इन सब का जीवन सुधर गया और परम भक्तों में गिनती हो गई और अपने जीवन को धन्य बना दिया। उपनिषदों का लेख है—

'यदि शैल समं पाप विस्तीर्ण बहुयोजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यः भेत्ता कदाचन्'।

अर्थात् यदि पापों का पहाड़ का पहाड़ भी हो तो भी ध्यान योग के प्रभाव से नष्ट हो जाता है। पाप भी ध्यान योग के प्रभाव से नष्ट हो जाता है। पाप को नष्ट करने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। मैं तुम्हें ध्यान हेयास्तद्वृत्तयः' की बात समझाते हुये बता रहा था कि जब मनुष्य का मन अन्तर्मुखी हो जाता है तो संसार की दुष्प्रवृत्तियाँ छूटने लगती है। देखो ! मनुष्य मल–मूत्र से घृणा करता है उसे देखना भी नहीं चाहता किन्तु सूअर आदि का वह आहार होता है। इसी प्रकार से मनुष्य अन्न खाता–पीता है मल–मूत्र का त्याग करता है इसलिये देवता लोग मनुष्य को हीन भावना से देखते हैं। अन्न जल खाने–पीने वाले मनुष्य को सिद्ध लोग हिमालय में रहने नहीं देते। मनुष्य जब ध्यान योग से अन्दर के दिव्य दृश्यों को देखने लगता है तो संसार का बाह्य आकर्षण छूटने लगता है। भीतर के दृश्य हमें मुक्ति की ओर ले जाते हैं और बाहर के विषय पतन और मौत की ओर ले जाते हैं। इसलिये यदि तुम अपनी दुष्प्रवृति एवं क्लिष्ट वृत्तियों को समाप्त करना चाहते हो तो ध्यान योग का अभ्यास करो। ध्यान में बैठने से वृत्तियाँ बदल जाया करती हैं। तुम्हें श्री प्रभु जी का मन्त्र मिला हुआ है। यदि संयतेन्द्रिय होकर ठीक प्रकार से जप व ध्यान किया जाये तो छः माह में ही सब कुछ मिल जायेगा। इसलिये सारी बुराइयों से, दुष्प्रवृत्तियों से छूटना चाहते हो तो इस का एक मात्र उपाय है मन को भीतर की ओर लगाओ। इसी से सब प्रकार का कल्याण होगा।

✲ ✲ ✲

नास्ति योगात् परम् बलम्

इस सृष्टि मे ईश्वरीय संकल्परूपी शक्ति काम कर रही है। जीवन के हर क्षेत्र में भी मनुष्य को बल की आवश्कयता है। बिना बल के कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। यहाँ पर बल का अर्थ है काम करने की क्षमता या सामर्थ्य। मानव देह को अर्थ सृष्टि में कर्म भूमि की संज्ञा दी गई है। इसी देह से कर्म की खेती होती है। इसीलिये इसे क्षेत्र भी कहा जाता है। हमारे तीन शरीर हैं। स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, और कारण शरीर। इन तीनों शरीरों के बल का अपना–अपना महत्व और आवश्कयता है। उपनिषदों का कथन है कि बलहीन व्यक्ति आत्म दर्शन का अधिकारी नहीं हो सकता। योग साधना के ये तीनों शरीर मूलाधार हैं। इसलिए इनका अपने–अपने स्थान पर बलयुक्त होना आवश्यक है। क्षीण शरीर से साधना नहीं हो सकती। स्वस्थ शरीर से ही धर्म का सम्पादन हो सकता है। स्वस्थ्य शरीर से ही धर्म का सम्पादन हो सकता है। स्वस्थ्य शरीर की परिभाषा क्या है ? इसे समझने के लिए हमें आयुर्वेद शास्त्र की ओर दृष्टि डालनी होगी। आयुर्वेद में कहा गया है कि जिस व्यक्ति के दोष (वात, पित्त, कफ आदि) सम हो अग्नि सम हो मल भी सम हो शरीर की क्रियाऐं भी सम हों तथा जो मन, आत्मा एवं इन्द्रियों से प्रसन्न हो उसे स्वस्थ्य कहा जाता है। समदोष का अर्थ है कि शरीर में वात पित्त और कफ सम अवस्था में हों। इन्हें दोष इसलिए कहा जाता है। क्योंकि इनके अनुपात में न्यूनता या अधिकता हो जाने पर रोग उत्पन्न हो जाता है। इनके विषम अवस्था रूपी दूषण के कारण ही ये दोष कहलाते हैं। वस्तुतः यही दोष शरीर के धारक भी है। क्योंकि ये शरीर को धारण करते हैं। इनके बिना शरीर के अस्तित्व की कल्पना नहीं हो सकती। हमारा शरीर पान्च भौतिक कहलाता है। इनमें पृथ्वी तत्व के रूप में रस रक्त आदि तथा इनके मल द्रव्य के रूप में शरीर में विद्यमान हैं। जल तत्व भी रस रक्त आदि तथा कफ आदि के रूप में विद्यमान हैं। अग्नि तत्व के प्रति निधि के रूप में शरीर में पित्त विद्यमान है। वायु तत्व ही पंच प्राण के रूप में विद्यमान है। जिसे आयुर्वेद में वात कहा जाता है। आकाश तत्व तो शरीर में है ही इसके अभाव में शरीर में वायु का संचरण सम्भव नहीं हो सकेगा। इस प्रकार से हम देखते हैं कि हमारा भौतिक शरीर पाँच तत्वों के सम्मिश्रण से बना हुआ है। स्वस्थ्य रहने के लिए शरीर में विद्यमान अग्नि भी सम होनी चाहिए। सम धातु का अर्थ है शरीर में पाये जाने वाले सप्त धातुओं के ठीक–ठीक परिमाण का निर्माण यदि सप्त धातुओं में से एक धातु ही बहुलता से निर्मित होने लगे या कम मात्रा में बनने लगे तो ये रोग का कारण हो जाता है। शरीर में मल भी निश्चित परिमाण में रहना चाहिए। इसकी न्यूनता से भी शरीर की स्थिति नहीं रह सकती।

मन की, आत्मा की तथा इन्द्रियों की प्रसन्नता भी स्वस्थ्य कहलाने में कारण है। स्वस्थ्य शरीर में ही स्वस्थ्य मन एवं इन्द्रियाँ विकसित रहती हैं और अपना काम ठीक से करती है। योगियों ने अनादिकाल से ही अपनी दिव्य दृष्टि से आयुर्विज्ञान के सिद्धान्तों को उद्घाटित किया है। इन्हीं सिद्धान्तों पर चलकर मनुष्य अपने शरीर एवं इन्द्रियों की शक्ति को पूर्णतया विकसित कर अलौकिक कार्य करने में समर्थ हो जाया करता है। शरीर को स्वस्थ्य रखने में प्राणों का स्वस्थ्य रहना भी आवश्यक हो जाता है। प्राणायाम आदि स्थूल क्रियाओं के

साथ–साथ सत्य, अहिंसा आदि यम नियम मनुष्य के मन में दृढ़ता भर देते हैं। इनके पालन से हमारे मन और प्राण दोनों ही बलयुक्त रहते हैं। हिंसा, असत्य आदि दूषित वृत्तियाँ मन एवं प्राणों को कमजोर बनाती हैं। इसलिए इनमें दृढ़ संकल्प शक्ति नहीं आ सकती। और व्यक्ति दीर्घजीवी भी नहीं हो सकता। सत्य, अहिंसा आदि योगी के आत्मिक बल कहलाते हैं। यदि कोई व्यक्ति ध्यान योग का भी विशेष अभ्यासी नहीं बन पाया है तो भी सत्य अहिंसा आदि महाव्रतों को जीवन में लेने पर उसके अन्दर असीमित मानस शक्ति आ जाती है। महात्मा गांधी जी सत्य, अहिंसा एवं ब्रह्मचर्य के उपासक रहे हैं। इसी के कारण उनका नाम महापुरुषों में गिना जाता है।

सत्य, अहिंसा आदि यमों पर ठीक प्रकार से प्रतिष्ठा हो जाए तो साधक के अन्दर नाना प्रकार के वाचिक एवं मानस सिद्धियाँ प्रकट होने लगती हैं। यम नियमों का पालन प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक है। ये ही वे मानवीय धर्म हैं। जिनके पालन से मनुष्य घर में पड़ौस में समाज में देश में तथा विश्व में एक दूसरे के साथ मैत्री सद्भाव एवं विश्व बन्धुत्व के अपेक्षित आदर्शों को ठीक प्रकार से अंगीकार कर सकता है। इस प्रकार से इन वृतों की जहाँ व्यक्तिगत जीवन में आवश्यकता है, जगत व्यवहार में भी सदा आवश्यक है। इनके बिना मानवीय सम्बन्ध विसाद् एवं कटु बन जायेंगे। यम् नियमों पर प्रतिष्ठित होने पर जो मानस शक्ति उत्पन्न होती है, वह भौतिक शक्तियों से हजारों गुना अधिक है। अहिंसा पर प्रतिष्ठित होने पर योगी हिंसक से हिंसक प्राणी को भी अपनी मानस शक्ति के प्रभाव से अहिंसक बना देता है तथा हिंसक प्राणी भी पालतू जानवर की तरह हिंसा भाव त्यागकर सौम्य बन जाता है। योग साधना में चाहे आत्म दर्शन की बात अथवा अन्य चमत्कारों के प्राकट्य की बात हो सबके मूल में दृढ़ मानस शक्ति आधार बनकर रहती है। यद्यपि उच्च श्रेणी का मानस बल तो ध्यान योग के अभ्यास से ही प्राप्तव्य है। आर्ष काल में मनुष्यों में ये मानस बल अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच चुका था। शास्त्र एवं पुराणों को पढ़ते हुए हमें ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों ने अपने चिंतन मात्र से बड़े बड़े दिव्य कार्य कर दिखाए। ये अलौकिक कार्य भौतिक विज्ञान वेत्ताओं की समझ से परे की बातें हैं। देवी अनसूइया ने अपने पतिवृत्त के प्रभाव के बल से ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव को भी छोटे शिशु के रूप में परिवर्तित कर दिया था। इसी प्रकार के असंख्य दृष्टान्त हमारे पुराण इतिहास में मिलते हैं। ***

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।।

श्रीमद् भगवद्गीता ६/२९

मैं सब भूतों में समभाव से व्यापक हूँ। न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है; परन्तु जो भक्त मुझको प्रेम से भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।

गुरु पूजन क्यों और कैसे

प्रोफेसर आचार्य चन्द्रहास शर्मा, दिल्ली

योगमार्ग में सद्गुरु से प्रत्यक्ष सम्बन्ध जोड़े बिना, सफलता नहीं मिल सकती आज के वैज्ञानिक तकनीकि युग में गुरु का स्थान टीचिंग मशीन, इन्टरनेट आदि उपायों ने ले लिया है। नश्वर जगत का ज्ञान देने वाली अविद्या को इन अविद्या निर्मित यंत्रों से प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु शक्ति के अधिष्ठान पर ब्रह्म का साक्षात्कार गुरु के माध्यम से या सद्गुरुसत्ता की साक्षात् प्रत्यक्षानुभूति के बिना नहीं किया जा सकता। पराविद्या का ज्ञान देने वाले सभी प्रकार के आचार्य वन्दीय है क्योंकि ये परमब्रह्म शुद्ध अमृततत्व का ज्ञान देकर जीवात्मा को अमरत्व प्रदान करने की सामर्थ्य रखते है। सामान्य रूप से आचार्य तीन प्रकार के होते है— प्रेरणादाता, बोधप्रदाता तथा मोक्षप्रदाता आचार्य ही सद्गुरु है। प्रेरणा प्रदाता आचार्य मार्ग का ज्ञान कराता है। जैसे कोई नक्शे के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचने की जानकारी देता है। बोधक आचार्य गन्तव्य स्थान का ठीक–ठीक बोध करा देता है। किस–किस उपाय से कैसे पहुँचा जाय ? किन लक्षणों और पहचान चिन्हो से उस लक्ष्य को जाना जाय–यह सारी जानकारी बोधक आचार्य दे सकता है किन्तु वहाँ तक पहुँचाने की सामर्थ्य उसमें नहीं होती। मोक्षदाता आचार्य उसके साथ यात्रा में चलकर उसे गन्तव्य तक पहुँचाने की सामर्थ रखता है। सद्गुरु, परमात्मा की अनुग्रह शक्ति का ही नाम है। वे शिव है। ऐसे सद्गुरु की सदा सेवा करने से बढ़कर और कोई पुरुषार्थ नहीं है। उसके शुभ या अशुभ वचनों को बिना विचार किये प्रसन्न चित्त से सदा करने में अपना अहोभाग्य माने। आचार्य के लिए भी 'गुरुभक्ति समायुक्त पुरुषो विशेषतः' अर्थात् गुरु भक्ति को अनिवार्य योग्यता के रूप में शास्त्रों ने प्रतिपादित किया है। 'गुरुरेव परं ब्रह्म, गुरुरेव परा गतिः। गुरुरेव परा विद्या–गुरुरेव परायणम्।। गुरुरेव पराकाष्ठा, गुरुरेव परं धनम्— इत्यादि शब्द योग विद्या के प्रदाता गुरुदेव के महत्व को रेखांकित करते है। यह योग विद्या यथार्थ ब्रह्म विद्या या हंस विद्या है। इसकी धारा गुरुदेव से चलकर शिष्य में प्रवेश करने पर ही प्राप्त होती है। कोई बहुत सी पुस्तकें पढ़कर योग विद्या का ज्ञाता नहीं हो सकता। जो गुरुदेव के हृदय को सन्तोष प्रदान करने वाली सेवा से उनके अन्तःकरण को करुण कृपा से उसी प्रकार विह्वल कर दे जिस प्रकार गाय का नवजात वत्स अपनी माँ को प्रेम विह्वल बनाकर उसके स्तनों में दूध उतरवाकर आनन्द से अमृत तुल्य दुग्ध का पान कर परम तृप्त होता है, उसी प्रकार गुरुदेव की कृपाशक्ति बलात् शिष्य को वरण कर उसका कल्याण करने लगती है। प्राणों से प्राणों का सम्बन्ध जुड़े बिना ब्रह्म विद्या का प्रकाश नहीं होता। शास्त्रों में तो यहाँ तक कहा गया है कि—

वेद शास्त्र आदि वस्तुतत्व का संकेत भर करने वाले हैं। उनके बताये मार्ग पर चलकर सद्गुरु की शरण ग्रहण कर लें। उसके बाद उनका उसी तरह परित्याग कर दे, जिस प्रकार यात्रा की मंजिल पर पहुँचा हुआ व्यक्ति अपने पैरों में मार्ग की धूलि धो डालता है। उसके बाद अपने परम कल्याण के लिए केवल गुरुभक्ति ही पर्याप्त है। क्योंकि सद्गुरु सत्ता साक्षात् ईश्वर ही है। योग दर्शन में ईश्वर को पूर्व ऋषियों का गुरु कहकर ही उसका लक्षण बताया गया है। 'स: पूर्वेषामपि गुरु: कालेनानवच्छेदनात्।' हिरण्यगर्भादि को भी पूर्व कल्प में ईश्वर ने सद्गुरु सत्ता के रूप में व्यक्त होकर सृष्टि का सारा रहस्य बोधकरा के आत्म ज्ञान प्रदान किया था। ब्रह्मविद्योपनिषद् में कहा गया है—

''वेदशास्त्राणि चान्यानि पदपांसुमिव त्यजेत्।
गुरुभक्तिं सदा कुर्याच्छ्रेयसे भूयसे नरः।।

गुरुरेव हरिः साक्षान्नान्य इत्यब्रवीच्छ्रुतिः।। ३०/३१

इसको वेदों की निन्दा न समझा जाय। पहले मैंने शाम्भवी मुद्रा के सम्बन्ध में लेख में लिखा था। इस मुद्रा के महत्व को योगशास्त्र में इसी प्रकार की शब्दावली द्वारा प्रतिपादित करने वाले कथनों को उद्धृत किया गया था। उस समय किसी आर्यसमाजी भाई का आक्रोश भरा पत्र आया था ये शब्द मेरे अपने नहीं है। जो कुछ हमारी शास्त्र परम्परा है उसके कथनों को ही मैं उद्धृत कर रहा हूँ। मेरे मन में वेदों का सर्वाधिक सम्मान है। इस कथन के निहितार्थ को समझने पर किसी प्रकार की भ्रान्ति की कोई गुंजायश नहीं रहेगी। योग प्रत्यक्ष गुरुशिष्य सम्बन्ध से प्राप्त होने वाली शब्द ब्रह्म से आगे की पराविद्या है। इसलिए इसकी प्रणाली को उसी रूप में अंगीकार कर अपना परम कल्याण करना होगा। महायोगी याज्ञवल्क्य ने योग के अंगों का उल्लेख करते हुए महर्षि पतंजलि की परम्परा से हटकर पांच के स्थान पर चार यम और नौ प्रकार के नियमों का पालन करने पर जोर दिया है। चार यम है—शीतोष्ण आहार, निद्रा विजय, सर्वदा शान्ति, निश्चलत्व एवं विषयेन्द्रिय निग्रह। नियमों के अन्तर्गत है—गुरुभक्ति, सत्यमार्गानुरक्ति, सुखागतवस्तु अनुभव, सुख से प्राप्त वस्तु से ही संतुष्टि, एकान्तवास, मन का नियन्त्रण कर्मफल की इच्छा न होना, वैराग्य भाव। ध्यातव्य है कि नियमों के अन्तर्गत गुरुभक्ति को ही सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। बिना इसके आगे न सत्य के प्रति प्रेम या मन का नियन्त्रण सम्भव है।

गुरुभक्ति के प्रभाव से हृदय का अज्ञान अंधकार दूर होता है। अन्तर आलोक में साधक इष्ट के दर्शन करता है। गुरुभक्ति से प्रबल काम क्रोध लोभ मोहादि विषय विकार साधक के सामने कुत्ते की तरह दुम हिलाने लगते हैं। गुरुभक्ति के प्रभाव से स्वर्ग लोक के अभिमानी देवता भी गुरुभक्त के दर्शन के लिए अपना स्वर्गीय सुख छोड़कर धूल धूसरित गलियों में भटकते हैं। सच्ची गुरुभक्ति कोई बच्चों का खेल नहीं है। जब तक मन और बुद्धि का संकल्प—विकल्प और विचार साधक पर हावी है तब तक गुरुभक्ति दिखावा मात्र है। गुरुभक्त अपने सुख—दुःख, हानि लाभ का विचार नहीं करता। सच तो यह है जब तक विचार करने की प्रकृति शेष है तब तक गुरुभक्ति होती नहीं। गुरुभक्ति से होने वाला चरम लाभ मोक्षमूल गुरोर्कृपा सच्चे गुरुभक्त को चरितार्थ होता है। इसीलिए शास्त्रों में यत्र—तत्र कहा गया है— 'गुरुभक्तिः सुदुर्लभा।' गुरुभक्त गुरुदेव की आज्ञा को ही सर्वोपरि समझता है। यदि कदाचिद् गुरुदेव उससे कहें कि 'कुएं में कुद जाओ' तो सच्चा गुरुभक्त यह विचार नहीं करता कि ऐसा करना उचित है या अनुचित ? कहीं हड्डी—पसली न टूट जाय। वह उनकी आज्ञा में ही परम कल्याण देखता है। उसका अपना आपा, अहंकार मन—बुद्धि सब कुछ गुरुदेव के श्रीचरणों में समर्पित हो चुका है। वह किसके लिए सोच—विचार करें ? और किससे सोचे ? ऐसे साधक को ही गुरुदेव अपना निजरूप देकर अभय बना देते हैं। गुरुभक्ति का विकास अभ्यास करते—करते शनैःशनैः होता है। जब उसमें दृढ़ता आ जाती है तो शारीरिक मानसिक और दैविक दुःख गुरुभक्त का कुछ बिगाड़ने में अपने को असमर्थ पाते हैं। सिद्ध योगियों ने साधकों के हितार्थ गुरुभक्ति विकास के साधन क्रम का यत्र—तत्र संकेत किया है। यहां उनमें से कुछ सोपानों का उल्लेख है।

सर्वप्रथम सिद्धगुरुदेव की मूर्ति अपने कक्ष में पवित्रता युक्त स्थान से सुगन्धित द्रव्यों से युक्त कर श्रद्धा से स्थापित करनी चाहिये। वह मूर्ति चित्ररूप में भी हो सकती है। यह गुरुदेव की वास्तविक देह नहीं है। केवल देह का बाह्य आवरण है। इस नश्वर देह को भी श्रद्धा और स्थिर चित्त से भक्ति पूर्वक आरती, पूजन, अर्चना, वन्दना, स्तुति पाठ आदि करता रहे। नाना प्रकार के क्लेश और कष्ट सहकर भी इस प्रकार के व्रत को नियम पूर्वक पालन करते रहना चाहिये। पूजन अर्चन के पश्चात् सद्गुरु के नाम या उनके द्वारा प्रदत्त मंत्र का नियम से मानसिक जप

करे तथा उस चित्र (मूर्ति) को ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर एकटक देखता रहे। बार–बार श्री गुरुचरणों में मानसिक प्रणाम अर्पित करते हुए उन चरणों का शक्तिपुंज मय भावना करते हुए ध्यान करते रहना चाहिए। जब ध्यान हो उस समय हृदय को आनन्द और प्रेम से परिपूरित करते हुए मन को गुरुदेव के प्रति कृतज्ञता और अहोभाव से भर ले। श्री सद्गुरु के तीन शरीर होते हैं—मानव देह, सिद्धदेह और दिव्य देह। क्रमशः एक–एक शरीर को आलम्बन बनाकर साधना करते रहने पर योगसिद्धि मिलती है।

सर्व प्रथम उनके स्थूल रूप का ध्यान और नाम का जप करते–करते मन के अन्दर खिंचाव और आनन्द की हिलोरों का अनुभव होने लगे तब चलते–फिरते गुरुमंत्र का जप और उनके स्थूल स्वरूप का कल्पना के नेत्रों से दर्शन करते हुए ध्यान करता रहे। जब जप और ध्यान से सात्विक भाव का प्रवाह होने लगेगा तो अश्रुपात पुलक, रोमांच, गला भर आना, कम्पन, शरीर में नाना प्रकार की क्रियाओं का आविर्भाव होने लगेगा। ये सत्वोद्रेक की अवस्था के सूचक लक्षण है। इन्हें होने दें, रोके नहीं। ये कोई रोग नहीं है अपितु गुरुशक्ति अन्दर के आकर और मल को साफ कर रही है, इसका सूचक है इसी दशा में मन जप और ध्यान के प्रभाव से वैखरी अवस्था से मध्यमा अवस्था और पश्यन्ती अवस्था में चलने लगेगा। जहाँ सद्गुरु के शक्ति पुंजमय भावशरीर का साधक को दर्शन होगा। शंख, घंटा, वंशी मृदंग आदि नाना प्रकार की ध्वनियाँ सुनायी देंगी। एक अजीब नशा सा छाने लगेगा। आँखे खुलना नहीं चाहेंगी। इस अवस्था में सद्गुरु के शक्ति और ज्योति पुंज 'सिद्धदेह' या सूक्ष्म शरीर का मानसिक पूजन करते हुए जप का फल उनके चरणों में समर्पित कर स्वयं भी उनकी गोद में उपविष्ट हो जाय। माँ के रूप में गुरुदेव में भाव दृढ़ करें।

जब सूक्ष्म भाव दृढ़ हो जाय तब गुरुदेव को चराचर व्याप्त उनकी दिव्य देह के अखण्ड मण्डलाकार सर्वव्यापक ज्ञानमूर्ति के रूप में उनकी दिव्य देह को हृदय में धारण कर ध्यान में तल्लीन हो जाय और श्री सद्गुरु के श्री चरणों में अपने मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त को पूर्ण रूपेण समर्पित कर उनकी शरणागति ग्रहण कर पूर्ण निर्भर और निश्चिन्त हो जाय। यह सद्गुरुदेव के चिन्मय शरीर के पूजन की विधि है। इसी चिन्मय सत्ता के द्वारा सद्गुरु शिष्य को दीक्षा देकर शक्तिपात करते हैं। जिससे शिष्य के अन्दर के विकारों का शमन होता है। शिष्य को गुरुदेव अपनी चिन्मय सत्ता का शरीर देकर साधना में सफलता की ओर अग्रसर करते हैं। जब साधक के मन में विश्वास और श्रद्धा के दृढ़ हो जाने पर सद्गुरुसत्ता हृदय में अपना घर कर लेती है तो साधक की इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और शरीर सद्गुरु की शक्ति से संचालित होने लगते हैं। साधक के शरीर में सद्गुरु सत्ता का आवेश होता है। गुरु शिष्य का तादात्म्य भाव साधक को सुख दुःख से मुक्त करने में सहायक होता है। साधक अपनी संचित और प्रारब्ध कर्मराशि गुरु सत्ता में सन्यस्त कर दृष्टाभाव से जीवनयापन करने लगता है। इस अवस्था में साधक के हृदय में अगाध गुरु प्रेम का सागर हिलोरे लेने लगता है। श्री गुरुदेव की कृपा प्रसादी के रूप में साधक को शाम्भवी मुद्रा सिद्ध हो जाती है। जिसमें वह भूताकाश से चलकर चित्ताकाश और फिर चिदाकाश में स्थित होकर उन्मनी समाधि में आरूढ़ होने लगता है। इस अवस्था में साधक के अन्दर स्वतः अजपा जप और गुरु सत्ता का ध्यान घटित होता है। कुण्डलिनी शक्ति जगने से मध्यमार्ग की सरल गति होकर देह बोध शून्य हो जाता है। श्री गुरुदेव की चिन्मयी शक्ति शिष्य देह के माध्यम से अनेक अलौकिक कार्य सम्पादन करने लगती है। इन कार्यों को साधक अपने अहंकार का पौरुष समझकर अपना अहित कर लेता है। इस अवस्था में पहुँचकर साधक को बालक की तरह सरल और निश्छल बनकर गुरु शरणागत बने रहना चाहिये तभी शक्ति ऊर्ध्व चक्रों का बेधन करती हुई साधना को परिपक्व बनाती है।

इसके आगे की गुणातीत परमप्रेम रूपा निर्माण भक्ति की अवस्था है। जिसमें पहुंचकर साधक की स्थिति कबीर के द्वारा वर्णित इस प्रकार की हो जाती है– **'माला जपूं न कर जपूं, मुख से कहूं न राम मेरा सुमिरन हरि करै, मैं पायौ विश्राम**।। तथा **'पीछे–पीछे हरि फिरैं, कहत कबीर कबीर**।' साधना गुरुशक्ति स्वयं करती और कराती है। साधक का अहंकार ही नहीं रहा फिर साधना कौन करे ? इस स्थिति में चित्त में दिव्य भावों का स्फुरण होकर आनन्द का निर्भर बहता रहता है। आनन्द, आनन्द और आनन्द–अपनी मस्ती के अलावा कुछ और नहीं रहता। साधक की अपने इष्ट में आहुति पड़ जाती है। पूर्ण समर्पण और दिव्यानन्द की स्थिति। इस स्थिति में श्रीमद् भगवद्गीता में वर्णित **'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणश्यामि, स च मे न प्रणश्यति**। अर्थात् सब में अपने इष्ट का दर्शन और सबका अपने इष्ट में दर्शन करने वाले साधक के लिए इष्ट सदा अंग संग हो जाते है।

सर्वत्र इष्ट सत्ता की स्फूर्ति, सर्वत्र इष्ट का दर्शन, सर्वत्र इष्ट का बन्दन और भजन होने लगता है। अस्मिता–नुगत समाधि की भूमिका पर साधक आरूढ़ हो जाता है। साधक अपने स्वरूप को कृष्णोऽहं, शिवोऽहम् आदि अनुभव करता है। यह सिद्धयोग की साधना वास्तव में गुरुभक्ति की ही साधना है। जितनी–जितनी मात्रा में गुरु भक्ति का विकास होता चलता है उतनी ही मात्रा में आत्मा का विज्ञान या आध्यात्मिक साधना और शक्ति का विस्तार होता जाता है।

सद्गुरु ज्ञानरूप तो है ही, किन्तु केवल ज्ञान देना ही उनका कार्य नहीं है। उसका वास्तविक कार्य शिष्य को माया जनित अज्ञान और तज्जनित दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से सर्वथा मुक्तकर अखण्ड ज्ञान और आनन्द सागर में शिष्य को निमज्जित करना है। यह कार्य तभी सम्भव है जब गुरु में ज्ञान के साथ–साथ शिष्य के त्रितापों से मुक्त करने की इच्छा हो। केवल इच्छा से ही यह कार्य नहीं होता। इच्छा जब शक्तियुक्त होती है तभी यह इच्छा ही करुणा या कृपा बनकर शिष्य का कल्याण कर पाती है। इच्छाशक्ति के साथ–साथ क्रिया शक्ति का होना भी आवश्यक है। इच्छा शक्ति ही क्रिया के रूप में स्थूल आकार ग्रहण कर दीक्षा कार्य द्वारा कुण्डलिनी जागरण का कार्य कर शिष्य के मल, आवरण और विक्षेप नष्टकरती हुई उसे परमात्म स्वभाव में, सीमित और संकुचित ज्ञान, इच्छा और अभाव से मुक्त कर अखण्ड ज्ञान तथा ऐश्वर्य से मण्डित करती है। क्रियाशक्ति के भाव से साधक के मार्ग की सारी बाधायें दूर होती जाती है। गुरु का सद्गुरुत्व शिष्य के कष्टों की निवृत्ति में है न कि कान फूंक देने भर कार्य में। बहिर्मुखी वृत्ति वाला मनुष्य सुख और आनन्द की तलाश में भोगों को भोगते–भोगते विफल मनोरथ होकर जब विषम सुख के प्रवाह में बहने से निराश हो उठता है उसी समय सद्गुरु किसी प्रकार की देह धारण कर या किसी के शरीर में प्रवेश कर हताश मनुष्य को आनन्द प्राप्ति का मार्ग दिखाते हैं गुरु शरण में आये हुये तीनों तापों से दग्ध मनुष्य को इष्ट कृपा की शीतल छाया प्रदान कर साधक की निराशा को आनन्द में बदल देना सच्चे सद्गुरु का कार्य है। वे मंत्ररूप देवता की आराधना के माध्यम से आत्म स्वरूप की उपलब्धि कर साधक को कृतकृत्य कर देते हैं। अब उसकी बहिर्मुखी वृत्ति का प्रवाह गुरू शक्ति के आन्तरिक आकर्षण से सहज ही अन्तर्मुखी हो जाता है और वह गाने लगता है––अरे ! मेरे मोहना ! आँख बन्द कर तुझे लेऊँ। ना मैं देखूं और को, न तोइ देखन देउँ।। यही अभेद समभाव, एकात्मभाव गुरू शिष्य सम्बन्ध की चरम परिणति है। गुरु भक्ति के प्रभाव से लोहा पारस पत्थर के संयोग से केवल सोना ही नहीं बनता अपितु पारस बन जाता है जो अन्यों को सोना बनाने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। इसी का नाम गुरुकृपा है।

***

किमस्ति योगः

(चतुर्विंशतिः शृंखला)

रचनाकार : **द्वारिका प्रसाद शर्मा**, लखनऊ

'किमस्ति योगः' शीर्षक से लिखी जा रही यह २४वीं शृंखला है। क्रमशः पातंजल योग सूत्रों को लेते हुए इस लेख में साधन पाद (द्वितीय पाद) के अवशिष्ट अन्तिम आठ सूत्रों का इसमें समावेश किया गया है। यद्यपि आठ सूत्रों को एक साथ लेकर पूर्ववत आख्यायित करने में लेख के आकार में विस्तार अवश्य हुआ है तथापि साधन पाद के सूत्रों का इस लेख में ही समापन समीचीन समझ ऐसा किया गया है। आशा है सुधी–साधक वृन्द एवं जिज्ञासुजन क्षमा करेंगे।

मंगल–कामना निमित्त मंगलाचरण किया गया है निम्न श्लोकों के माध्यम से।

(१) **श्री रामलालस्य महाप्रभोर्यः, अभूत् शिष्यप्रवरश्च कृपांशभूतः।**
अस्मद् गुरुर्योगिराज् चन्द्रमोहनः, कुर्यात् शिवं नो विदधातु क्षेमम्।।

(२) **आसाद्य तेषां हि कृपाप्रसादं, कुर्वे कथं दर्शन योग शास्त्रे।**
मन्ये तदेदच्चरण प्रसादं, अतो नमो मेऽस्तु सहस्रशो नमः।।

(३) **आरभे पूर्वरीत्यैव, प्राक्श्लोका भाषया सह।**
अष्टसूत्राणि पादस्य, अस्मिंल्लेखे लिखाम्यहम्।।

महाप्रभु श्री रामलाल की कृपा के अंशरूप तथा उनके पट्ट शिष्य, हम सबके गुरुदेव योगिराज जो श्री चन्द्रमोहन जी महाराज हैं, वे हमारा कल्याण व रक्षा करें।

उनकी ही कृपा–प्रसाद को प्राप्त कर, मैं यह दर्शन योगशास्त्र कैसे कर रहा हूँ। यह मैं उन्हीं के चरणों का प्रसाद मानता हूँ। अतः उन्हीं के चरण कमलों में हजारों–हजारों बार मेरा नमन हो।

पूर्व रीति से ही पहले श्लोक–रचना तत्पश्चात् भाषा सहित साधन पाद के आठ सूत्रों पर इस लेख में मैं (निमित्त मात्र) लिख रहा हूँ।

—सूत्रं तदर्थ सहितम्—**ततो द्वन्द्वानभिघातः।**

(४) **आसन सिद्धौ संजाते, द्वन्द्वास्तापयन्ति न हि।**
सहिष्णुताभिवृद्धौच, विक्षेपाः प्रभवन्ति नो।।

जब आसन की पूर्वोक्त प्रकार से पूर्णसिद्धि हो जाती है तब द्वन्द्व (शीत–उष्ण आदि) नहीं सताते हैं और शरीर में सहन शक्ति होने से ध्यान–समाधि में विक्षेप नहीं होता है।

—सूत्रं तदर्थसहितम्—**तस्मिन्सति श्वास प्रश्वासयोगति विच्छेदः प्राणायामः।**

(५) आसनस्य स्थिरे जाते, श्वास प्रश्वासयोगतिः।
नियमनस्य प्रक्रियां, प्राणायाम उदीर्यते।।

आसन के स्थिर होने पर श्वास–प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम है।

(६) बाह्य वायोर्नासिकातः, कर्षणं श्वास उच्यते।
कोष्ठेस्थस्य निष्कासनं, श्वास प्रश्वास संज्ञितौ।।

बाहर की वायु को नासिका से खींचना श्वास है तथा कोष्ठस्थित वायु को नासिका से बाहर निकालना श्वास प्रश्वास है।

(७) श्वास प्रश्वास गत्योश्च, प्रवाहस्तन्नियन्त्रणम्।
रेचक पूरक कुम्भैः, बाह्याभ्यन्तरस्थानयोः।।

(८) प्राणायामो हि प्राणानां, आयामेन च कथ्यते।
आसन सिद्धेः पश्चाद्धि, प्राणायामः प्रपद्यते।।

श्वास प्रश्वास की गतियों का प्रवाह रेचक–पूरक–कुम्भक द्वारा बाहर भीतर दोनों स्थानों में रोकना ही प्राणायाम है।

प्राणों के आयाम से ही यह प्राणायाम कहा जाता है। यह प्राणायाम आसन सिद्धि के बाद सम्पन्न होता है। अतः बिना आसन सिद्धि किये प्राणायाम करना उचित नहीं है।

—सूत्रं तदर्थसहितम्—बाह्याभ्यन्तर स्तम्भ वृत्तिर्देशकाल संख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः।।

(९) बाह्याभ्यन्तर स्तम्भैर्वृत्तिभिश्च, त्रिभिः प्रकारैर्गदितो महर्षिणा।
प्राणायामो देशकालाकंगणनैः, दृष्टो दीर्घो भविता चैव सूक्ष्मः।।

प्राणायाम बाह्य वृत्ति, आभ्यन्तर वृत्ति और स्तम्भवृत्ति (ऐसे तीन प्रकार) का होता है तथा वह देशकाल संख्या में देखा हुआ लम्बा और हल्का हो जाता है।

(१०) प्राणायामस्य त्रिभेदाः, सूत्रेऽस्मिन्नुप वर्णिताः।
बहिर्निष्कास्य श्वासं वै, सुखान्तस्य निरोधनम्।।

इस सूत्र में प्राणायाम के तीन भेदों को कहा है। श्वास को बाहर निकालकर उसको बाहर जितने समय तक सुख से रोक सके, रोके रहना।

(११) यावत्कालं तथा ध्यानं, कुतोऽस्यास्ति च सस्थितिः।
कियत्कालं तिष्ठतीह, तावत् प्राणस्य का गतिः।।

और यह भी ध्यान रखना कि बाहर आकर कहाँ ठहरा है और कितने समय तक ठहरा है और उतने समय में स्वाभाविक प्राण की गति की कितनी संख्या होती है।

(१२) स्वभावतः प्राणवायोः, संख्यया का गतिर्भवेत्।
बाह्य वृत्ती रेचकोऽयं, रेचकाधनिरूध्यते।।

यह बाह्य वृत्ति (रेचक प्राणायाम) है। इसमें वायु को रेचक पूर्वक रोका जाता है।

(१३) तद्देश काल संख्याभिः प्राणायामः परीक्ष्य च।
यथा यथैषः प्रोन्नतः, लम्बस्तत्सूक्ष्म एवं हि।।

यह देश, काल, संख्या से परीक्षा करते समय प्राणायाम जैसे–जैसे उन्नत होता जाता है वह लम्बा (बहुत देर तक रुकने वाला) और सूक्ष्म (हलका) होता है। अर्थात् परिश्रम कम होता है।

(१४) रेचकाभ्यसनारम्भे, नासात्स्वल्पं च दूरतः।
निधाय तूलिकां पश्येत्, स्पन्दते तूलिका न वा।।

जैसे, रेचक प्राणायाम प्रथम आरम्भ किया (तो जांच करने के लिए) नासिका से कुछ दूरी पर रूई रखकर यह देखो कि रूई श्वास से हिलती है या नहीं।

(१५) तथा सा कति चांगुल्यः, नासाद्दूरत्वमागता।
लम्बता–परिमाणंच, तूलिकानासिछिद्रतः।।

और कितने अंगुल नासिका से दूर रूई है। रूई और नासिका–छिद्र के अन्तर से लम्बाई मालूम होती है।

(१६) ज्ञायते च ततोऽभ्यासात्, दिनानां कतिचित्तथा।
दूराद्दूरं निधायैषा, लम्बता गृह्यतेऽथवा।।

कुछ दिनों के अभ्यास और ज्यादा दूर पर रूई रखकर देखने से और ज्यादा दूर पर रूई रखकर देखने से अधिक दूरी पर रूई हिलने से लम्बाई मालूम होती है।

(१७) यदा तद् द्वादशांगुल्यः, रेचकः स्थिरतां व्रजेत्।
सूक्ष्मा संज्ञा तदाज्ञेया, गदितोऽस्ति महर्षिणा।।

इस प्रकार जब बारह अंगुल रेचक स्थिर हो जाय तो उसकी सूक्ष्म संज्ञा जाननी चाहिये। यह महर्षि द्वारा बताया गया है।

(१८) प्राणायामे रेचके तु, यथा श्वासय लम्बता।
बहिर्वृद्धिमवाप्नोति, तथैवास्तीह पूरके।।

जिस प्रकार रेचक प्राणायाम में श्वास की लम्बाई बाहर बढ़ती जाती है, उसी प्रकार पूरक प्राणायाम में भीतर बढ़ती जाती है।

(१९) अन्तर्वृद्धि समायाति, अभ्यसनान्निरन्तरम्।
प्राणवायुराविशते, नाभिं पादतले तथा।।

अभ्यास करते–करते प्राणवायु नाभि तथा पैर तले तक पहुँच जाती है।

(२०) मस्तकोपरि सः वायुः, समाविशति तत्र ह।
कथ्यते दीर्घ–सूक्ष्मं तद्, यन्नाभिं परिगच्छति।।

वह वायु ऊपर मस्तक तक पहुँच जाती है। नाभि तक पहुँचने की स्थिति को दीर्घ–सूक्ष्म कहते हैं।

(२१) रेचक पूरकयोरेषा, परीक्षा गदिता ननु।
कुम्भके नैव सः वायुः, प्रयात्यन्तर्बहिश्च न।।

यह परीक्षा रेचक पूरक की है। कुम्भक में वायु न बाहर निकलती है न भीतर जाती है।

(२२) देशस्वस्य परीक्षैषा, कार्या. कालेन वै पुनः।
.रेचक पूर कुम्भानां, प्राणायामस्य सर्वतः।।

यह देश द्वारा परीक्षा हुई। इसी प्रकार रेचक–पूरक–कुम्भक प्राणायाम की काल (समय) द्वारा परीक्षा की जाती है।

(२३) प्रारम्भे कतिकालन्तु, प्राणायामः प्रवर्तते।
शनैश्शनैर्निरोधोऽस्य, दीर्घकालावधिर्भवेत्।।

प्रारम्भ में कितने समय तक प्राणायाम होता है, वही धीरे–धीरे ज्यादा समय तक रुकने वाला होता जाता है।

(२४) वृद्धिं गते निरोधस्य, यदा षड्त्रिंशमात्रकः।
प्रश्वासगति विच्छेदः, तद्दीर्घ सूक्ष्म संज्ञकः।।

बढ़ते–बढ़ते जब ३६ मात्राओं पर्यन्त प्रश्वास की गति का अभाव हो, वह दीर्घ–सूक्ष्म संज्ञा वाला होता है।

(२५) मात्रायाः परिमाणन्तु, हस्तस्य जंघां परितः।
परीवर्तनाद भवेधावत्, तन्मात्रः, देशसंशितः।।

एक मात्रा का समय हाथ को जंघा के चारों ओर घुमाकर जितना समय होता है। वह काल परीक्षा है।

(२६) श्वास प्रश्वासयोरेवं यदाऽस्ति सहजा गतिः।
प्रश्वासानां द्वादशानां, एक एव भवेत्तदा॥

इसी प्रकार प्राणायाम के द्वारा कई मामूली स्वाभाविक श्वास प्रश्वास का एक–एक श्वास होता है, जब अभ्यास से १२ श्वास–प्रश्वास का एक श्वास हो जाय।

(२७) प्राणायामस्तदा तद्दै, दीर्घसूक्ष्मः प्रकल्पितः।
श्वास प्रश्वासयोर्यावत्, चतुर्विंशति–संख्ययोः॥

तब प्राणायाम दीर्घसूक्ष्म संज्ञा वाला होता है। २४ श्वास प्रश्वास का एक श्वास होने तक,

(२८) एकः श्वासो भवेद् यावत्, मृदु दीर्घश्च सूक्ष्मकः।
एवं श्वासप्रश्वासयोः, षड्त्रिंशति च संख्ययोः॥

मृदु दीर्घ सूक्ष्म कहलाता है। ३६ स्वाभाविक श्वास प्रश्वास का एक श्वास होने तक,

(२९) एकः श्वासो भवेद यावत्, मध्यसूक्ष्म उदाहृतः।
श्वास प्रश्वासयोरेवं, चतुःषष्टीति संख्ययोः॥

वह मध्य सूक्ष्म कहलाता है। इसी प्रकार जब ६४ श्वास तक आ जाता है,

(३०) एकःश्वासो भवेत्तावत्, नाभितस्ताऽनं भवेत्।
उत्तमस्तत्तु ज्ञेयोऽत्र, योगिभिर्गदितस्तु तत्॥

प्राणवायु नाभि से टक्कर खाता है। इसे उत्तम सूक्ष्म की संज्ञा योगियों द्वारा प्रदान की गई है।

(३१) प्राणायामस्य सैषा हि, परीक्षा संख्यया स्मृता।
अभ्यासेनैव यात्येव, वर्धनं तच्छनैश्शनैः॥

यह श्वास प्रश्वास की संख्या द्वारा परीक्षा है। इस प्रकार अभ्यास करते करते यह शनैः शनैः बढ़ता जाता है।

(३२) श्वासस्य गणनायान्त्व, नियमो यत्प्रवक्ष्यति।
(सार्द्धद्वयपल) मिण्टे पंचदशावारम्, सहजः श्वसिति पुमान्॥

श्वास की संख्या का यह नियम है कि श्वास मनुष्य एक मिनट में (यानी अढाई पल में) पन्द्रह बार लेता है।

(३३) वायुर्यावत्विशतेऽन्तः तत्श्वासः परिकीर्न्तितः।
निरोधोऽभ्यन्तरे यत्तु, विरामस्तदुदाहृतः।।

वायु के अन्दर जाने की स्थिति को श्वास एवं भीतर रुकने की स्थिति को 'विराम' कहते है। इस प्रकार,

(३४) प्राणायामे कृते चैवं, प्राणानां वश्यता भवेत।
शरीरं स्वस्थमायुष्मत्, जागृता कुण्डली तथा।।

प्राणायाम के द्वारा शरीर की प्राण–वायु का वशीकरण हो जाता है। और शरीर स्वस्थ, दीर्घायु और कुण्डलिनी जागृत होती है।

(३५) रेचको वर्णितः पूर्वं, बाह्यवृत्तिं समाश्रितः।
साम्प्रतं वर्ण्यते नूनं, 'पूरकः' संज्ञयायुतः।।

बाह्यवृत्ति वाले रेचक को बताया जा चुका है। उसी प्रकार अब (आभ्यन्तर वृत्ति) पूरक को बताते हैं।

(३६) प्राणवायुं समाहृत्य, बाह्यादाभ्यन्तरं नयेत्।
यावत्कालमितो वायुः, सुखात्तस्य निरोधनम्।।

प्राणवायु को भीतर ले जाकर जितने समय तक सुख से रुके, रोके रहना।

(३७) कुर्यात्तथा समाद्ध्यायेत्, तत्कुतश्च कालः कियत्।
रमते तावदवधिः, श्वासस्य सहजा गतिः।।

और यह भी ध्यान में रखना, कितने समय तक सुख से रुके रहना, और अन्दर कहाँ तक प्राणवायु रुकता है।

(३८) कियद वारं प्रचलति, ध्यानेनानुपश्यताम्।
आभ्यन्तरीयः पूरकः, प्राणायामस्तु कथ्यते।।

यह भी ध्यान से देखना कि उतने समय में मामूली श्वास कितनी बार चलती है। यह आभ्यन्तर पूरक प्राणायाम है।

(३९) यदा निरुध्यते वायुः, सहजश्च स्वभावतः।
विनायासेन यत्रस्थः, स्तम्भनावृत्तिरिष्यते।।

जब वायु का निरोध भीतर किया जाता है और सहज–स्वभाव से बिना यत्न के जब तक सुख से उसका भीतर स्तम्भन होता है, उसे स्तम्भवृत्ति का प्राणायाम कहा जाता है।

(४०) रेचके ४ यथा पूरे, परिमाणो हि गृह्यते।
गृह्वीयाच्च तथैवास्मिन्, प्रमाणं काल देशयो:॥

जिस प्रकार रेचक तथा पूरक प्राणायामों में परिमाणादि ग्रहण किया जाना बताया गया है, वैसा ही स्तम्भन प्राणायाम में भी काल और देश का परिमाण—प्रमाण करना उचित रहता है।

(४१) अभ्यास समये तावत्, प्राणायामास्त्रयोविधा:।
स्वेष्ट मंत्रस्य जापेन, करणे सिद्धिदायका:॥

इस प्रकार ये तीन प्रकार के प्राणायाम् वर्णित है। इनके अभ्यास काल में अपने इष्ट मंत्र का जप करते रहने से ये सिद्धिप्रद हुआ करते है।

(४२) शास्त्रकारै: क्वचिदन्यत्, कुम्भकोऽष्टविध: स्मृत:।
सहित: सूर्यभेदी च, उज्जायी शीतली तथा॥

किसी—किसी शास्त्रकार ने कुम्भक के आठ भेद वर्णन किये है। वे है—(१) सहित (२) सूर्यभेदी (३) उज्जायी (४) शीतली।

(४३) भस्त्रिका भ्रामरी चैव, मूर्च्छा तु केवली तथा।
अन्ये हि विधयस्तस्य, कुम्भकस्यैव वर्णिता:॥

(५) भस्त्रिका (६)भ्रामरी (७) मूर्च्छा तथा (८) केवली। इसकी और भी विधियाँ है।

(४४) प्राणायामस्य ह्यभ्यासो, कर्त्तव्योऽवधानत:।
गुरो: कृपात: संप्राप्य:, धत्ते स्वफलतां तदा॥

प्राणायाम का अभ्यास सावधानी से करना चाहिये। यह भी गुरू की कृपा से प्राप्तव्य है और तभी फलित भी होता है।

—सूत्रं तदर्थसहितम्—बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी चतुर्थ:।

(४५) बाह्याभ्यन्तरांश्चैव, त्यागात् यद् भवति स्वत:।
प्राणायाम: प्रगदित:, चतुर्थ इति संज्ञित:॥

बाहर और भीतर के विषयों को त्याग देने से स्वत: होने वाला चौथा प्राणायाम कहा गया है।

(४६) प्राणायामास्त्रय: पूर्वे, सूत्रे सन्ति निरूपिता:।
प्राणायामश्चतुर्थो य:, तद् भिन्न एव कल्पित:॥

पूर्व सूत्र में तीन प्राणायाम वर्णन किये है। उनसे भिन्न यह चौथा प्राणायाम है।

(४७) एतदेवान्तरमस्मिन् प्राणायामेषु तत्त्रिषु।
देशकालांकगणनैः, विषयः परिदर्शितः॥

इसमें अन्तर इतना ही है कि पूर्वोक्त रेचक–पूरक–कुम्भक प्राणायामों में देश, काल संख्या परिदृष्ट है।

(४८) बाह्य आभ्यन्तरीयः स्यात्, ज्ञानस्यैव निराकृतिः।
मनोनिलीय स्वीयेष्टे, स्वतः प्राणगतिर्भवेत्॥

उनमें बाह्य विषय आभ्यन्तर विषय है। इस जानकारी को त्याग कर मन को इष्ट चिन्तन में लगा देने से देश काल संख्या के बिना ही स्वतः प्राण की गति होती है।

(४९) यस्मिन्कस्मिन्नपि देशे, संरूणद्धि यदा तदा।
एष एव चतुर्थो हि, प्राणायामः प्रकीर्तितः॥

यह जिस किसी भी देश में प्राणगति रुक जाती है। यही वह चौथा प्राणायाम कहा गया है।

(५०) प्राणायामेषु पूर्वेषु, यत्नादभ्यसनात्त था।
रूध्नन्ति प्राणगतयः, अस्यैषा भिन्नतेरिता॥

पूर्वोक्त प्राणायामों में यत्नपूर्वक अभ्यास के द्वारा प्राणगति रोकी जाती है, इसमें उससे भिन्नता वर्णित है।

(५१) पायोर्लिंगूढस्य छिद्रौ द्वौ, वामपादस्य मूलतः।
आच्छादनान्मूलबन्धः, उड्डियाने तथैव हि॥

गुदा एवं लिंग के छिद्रों को बाँये पैर की एड़ी से बन्द करने को मूलबन्ध कहते है वैसे ही उड्डियानबन्ध में,

(५२) जंघे द्वे तु सम्पीड्य, सम्मेल्याथ पदतलान्।
उदरं मेरूदण्डेन, चोपनं विधिराहितः॥

दोनों जंघाओं को मोड़कर पैरों के तलुओं को आपस में मिलाकर पेट को रीढ़ की हड्डी से चिपटा देने की उड्यिान बन्ध की विधि बतलाई गई है।

(५३) प्राणायाम क्रिया ह्येषा, साकं मूलोड्डियानाभ्याम्।
कर्तव्या हि यतो वायुः तस्मादूर्ध्वं प्रयाति वै॥

इस प्राणायाम क्रिया को मूल बन्ध, उड्डियान बन्ध लगाकर प्रारम्भ करना चाहिये क्योंकि इनसे प्राणायाम करने से प्राणवायु को ऊपर ले जाने में सहायता मिलती है।

(५४) अपानवायुः प्राणेन, रीत्या सुगमया तथा।
प्राणापानौ समीभूत्वा लयतां प्राप्यते तदा॥

ऐसा करने से अपान वायु प्राणवायु से सरलता से मिल जाती है। अर्थात् प्राण और अपानवायु एक साथ मिल प्राण में ही अन्तर्हित होते हैं।

—सूत्रं तदर्थसहितम्—**ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।**

(५५) **अभ्यसनेन ह्येतस्य, यच्चदावरणं भवेत्।**
अज्ञानस्याविवेकस्य, तत्सर्वं क्षीयते तदा॥

प्राणायाम के अभ्यास से ज्ञान का आवरण (विवेक ज्ञान का पर्दा) नाश हो जाता है।

(५६) यथा यथैवोऽभ्यासश्च, वर्धमानो भवत्युत।
तथा तथैव शिथिलाः, जायन्ते मनुजस्य वै॥

प्राणायाम अभ्यास जैसे–जैसे बढ़ता जाता है वैसे ही वैसे शिथिल होते जाते हैं मनुष्य के,

(५७) संचित कर्म संस्काराः क्लेशाः स्युर्ज्ञानहीनजाः।
सर्वेऽपि ते प्रणश्यन्ति, हेम्नि तप्ते यथा मलाः॥

प्राणायाम करने से संचित कर्मों के संस्कार तथा अज्ञान जनित क्लेश सब नष्ट हो जाते हैं जैसे तपाये हुए सोने के सभी मल नष्ट हो जाते हैं।

—सूत्रं तदर्थ सहितम्—**किञ्च धारणासु च योग्यता मनसः।**

(५८) मनसो योग्यता स्याद्, धारणासु कृतासु च।
नैरन्तर्येणाभ्यसनाद्, चांचल्यं मनसस्तु वै॥

धारणा में मन की योग्यता होती है। प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से मन की जो चंचलता है,

(५९) क्षीयते तत आयाति, धारणाया हि योग्यता।
सूत्रेऽन्यस्मिन्नग्रगदितं, प्रत्याहारस्य लक्षणम्॥

वह नष्ट हो जाती है और उसमें धारणा की योग्यता आ जाती है। अन्य अग्रिम सूत्र में अब प्रत्याहार का लक्षण बतलाया गया है।

—सूत्रं तदर्थसहितम्—**स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।**

(६०) विषयेभ्य असम्बन्धात्, चित्तरूपानुकारिता।
इन्द्रियाणां हि भवति, प्रत्याहारस्तदुच्यते॥

अपने विषयों के साथ सम्बन्ध न होने पर इन्द्रियों का चित्त के स्वरूप में तदाकार–सा हो जाना, प्रत्याहार है।

(६१) मनुजस्य यथा छाया, चलति चलने सति।
उपाविशत्युपावेशे, इन्द्रियाणां तथा गतिः।।

जिस प्रकार मनुष्य की छाया मनुष्य के चलने पर चलती है, बैठने पर बैठ जाती है, उसी प्रकार इन्द्रियों की गति है।

(६२) चित्तानुसरा भवति, इन्द्रियाणां क्रिया तदा।
बाह्येषु विषयेष्वेव, विमुखानीन्द्रियाणि हि।।

प्रत्याहार में इन्द्रियों की क्रिया या व्यापार चित्त के अनुसरण वाली हो जाया करती है। परन्तु इन्द्रियों की यह विमुखता बाह्य विषयों में ही हुआ करती है।

(६३) चित्तस्य सदृशं तानि, आत्मतत्वस्थितानि नो।
यतो भवन्ति तो तानि, "अनुकार इव" अतः।।

चित्त के अनुरूप तो ये इन्द्रियां अवश्य हो जाया करती हैं परन्तु ये आत्मतत्वाभिमुखी नहीं होती है। इसीलिये यहाँ "अनुकार इव" पद का प्रयोग उपयुक्त है।

—सूत्र तदर्थ सहितम्—**ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्।**

(६४) प्रत्याहारस्य संजाते, परमा वश्यता ततः।
विषयेभ्य इन्द्रियाणां, विरतिर्विजयो भवेत्।।

प्रत्याहार होने से इन्द्रियों की परमा वश्यता हो जाती है। इन्द्रियों का अपने विषयों से रहित हो जाना ही इन्द्रियों का जीतना है।

(६५) शक्य एव भवेधावत्, चित्तमेकाग्रतां व्रजेत्।
निरुध्यमाने चित्ते हि, निरूध्यन्तीन्द्रियाण्यपि।।

यह तभी सम्भव है जब चित्त एकाग्र हो जाता है और चित्त के निरोध होने पर इन्द्रियों का भी निरोध हो जाता है।

(६६) परमावश्यता चैषा, इन्द्रियाणां प्रकल्पते।
सति प्रत्याहार सिद्धौ, योगीन्द्रियजयी भवेत्।।

प्रत्याहार सिद्धि होने पर योगी को इन्द्रिय जय स्वतः हो जाती है।

(६७) गुरोरनुग्रहादथ, समाप्तोऽयं द्वितीयकः।
योगदर्शन शास्त्रस्य, साधनपाद—विश्रुतः।।

मृत्यु दण्ड से विधवापुत्र-रक्षा

प्रेषक—केशव देव उपाध्याय (वाराणसी)

प्रस्तुत प्रसंग में श्री महाप्रभु जी की जीवन लीला से संबंधित एक घटना का वर्णन किया गया है जिसमें उन्होंने विलक्षण तरीके से एक विधवा ब्राह्मणी के बालक के मृत्यु दण्ड से मुक्ति दिलायी है। घटना बिहार प्रान्त के पटना जिले की है। पटना जिले में श्री महाप्रभु जी के यौगिक प्रचार कार्यक्रमों में चमत्कारों की बाढ़—सी आ गयी थी। वहाँ के एक प्रसिद्ध वकील श्री श्याम नारायण श्री महाप्रभु जी के कृपापात्र शिष्य थे। दादा गुरूदेव श्री महाप्रभु जी की ऐसी विलक्षण कृपा इन वकील साहब पर थी कि चलते, उठते, बैठते कोर्ट हो या उनका घर या उनका चैम्बर निरन्तर प्रभु के ध्यान में रहा करते थे। वे प्रायः हर दम अपने गुरूदेव भगवान से प्रार्थना किया करते थे कि हे प्रभु ! एक बार पटना का न्यायालय तो आप देख ही लें। श्री महाप्रभु जी उनके इस निवेदन पर प्रत्येक बार यही कहते अरे श्यामा ! कोर्ट भी कोई देखने की जगह है। कोर्ट क्यों चलूँ ? कोई तो सत्य को असत्य तथा असत्य को सत्य प्रमाणित करने का एक स्थान मात्र है। श्री महाप्रभु जी के बार—बार इंकार करने पर भी वकील साहब अपने गुरूदेव से यही प्रार्थना करते कि प्रभुजी आप पटना कोर्ट में एक बार अवश्य पधारें।

प्रभु के यौगिक चमत्कारों तथा कृपामय लीलाओं की बात उनके अनुयाइयों द्वारा सुनकर एक विधवा ब्राह्मणी भी श्री महाप्रभु जी के चरणों में आ उपस्थित हुयी। श्री चरणों में उसने विधिवत् प्रणाम किया और प्रार्थना की कि हे प्रभो ! मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो। वर्ना मैं बिना मौत ही मर जाऊँगी।

जिस समय यह विधवा ब्राह्मणी श्री प्रभु चरणों में उपस्थित हुई उस समय वकील श्री श्याम नरायण वहाँ उपस्थित नहीं थे। विधवा ब्राह्मणी ने केवल प्रणाम कर इतना ही कहा कि प्रभो ! मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो और विलाप करने लगी। श्रीमुख ने आदेश दिया अरे ! बता तो सही, बात क्या है ? क्यों रो रही है तू ?

कुछ देर बाद जब महिला ने रोना बन्द किया तो सिसकते—सिसकते कहने लगी कि हे महाराज ! हमारा लड़का निर्दोष है उसे एक कत्ल के केस में फंसाया गया है, बयान आदि हो चुके हैं। अब केवल फैसला होना शेष है। यदि आप की कृपा नहीं हुई तो इस हफ्ते के अन्दर ही मेरे लाल को फांसी हो जावेगी। मैं विधवा हूँ, नाथ मेरी रक्षा करो।

श्रीमुख ने आदेश दिया कि जब तेरा लड़का निर्दोष है तो उसे कत्ल के केस में क्यों फंसाया गया है बिल्कुल सत्य—सत्य बतलाओ। विधवा ने सिसकते स्वर में प्रार्थना की कि प्रभुजी बात यह है कि मेरे गाँव का जमींदार राणा एक लड़की की इज्जत लूटना चाहता था। मेरे बालक ने उस जमींदार राणा का खुलकर विरोध किया तथा उस लड़की की इज्जत बचायी। उस लड़की की इज्जत तो बच गयी प्रभुजी ! परन्तु इस घटना के बाद से ही राणा हमारे बच्चे के पीछे हाथ धोकर पड़ गया है। उसके कहने से पुलिस वाले रोज उसे किसी न किसी केस में फंसाये रहते हैं। यह जो कत्ल का केस है, इसमें खून तो राणा ने स्वयं किया है परन्तु जबरदस्ती हमारे बच्चे को उलझा दिया है। अपने प्रभाव से राणा ने अपने कुकर्म को छिपाने के लिए पुलिस वालों को अपने पक्ष में मिला लिया है। वे राणा के खिलाफ न तो कुछ कह सकते हैं और न कुछ लिख सकते हैं। इतना कहकर महिला ने फिर सिसकते हुए प्रार्थना की कि प्रभो ! मेरी रक्षा करो वरना मेरे लाल को फांसी की बात सुनने से पहले मैं ही मर जाऊँगी। श्री मुख ने आदेश दिया कि अब तू अपने घर जा, यदि तेरी बातें सत्य है तो प्रभु तेरी रक्षा किसी

न किसी प्रकार अवश्य करेंगे। विधवा ने श्री चरणों में प्रणाम किया और विलाप करते हुए अपने घर को चली गयी।

उस दिन सायंकाल सत्संग में जब श्री श्याम नारायण वकील पहुँचे तो उन्होंने अपनी नित्य वाली प्रार्थना फिर सुनायी कि प्रभुजी ! आप कोर्ट क्यों नहीं चलते हैं, एक बार चलें, आपको मैं कोर्ट दिखलाऊँ। प्रभु जी ने मुस्कराते हुए आदेश दिया, अरे श्यामा! तू बहुत बार निवेदन कर चुका है, कल हम तुम्हारा कोर्ट देखने चलेंगे। यह सुनकर श्याम नारायण वकील की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। तत्काल उन्होंने यह खबर हर जगह भिजवा दी कि हमारे गुरूदेव परम योग योगेश्वर श्री प्रभु जी महाराज कल कोर्ट देखने पटना न्यायालय में पधारेंगे। श्री वकील साहब ने प्रभु जी से पूछा प्रभो ! कल आप कब कोर्ट चलेंगे। श्री मुख ने आदेश दिया तुम लोग अपने कोर्ट के समय से पहुँच जाना मैं भी समय से ही वहाँ पहुँच जाऊँगा।

वकील श्री श्याम नारायण दूसरे दिन समय से पहले ही कोर्ट पहुँच गये। प्रभु की चमत्कारिक घटनाओं तथा अहैतुकी कृपाओं की बात तो पटना शहर में पहले से ही धूम मचाये हुए थी। फिर वकील साहब ने जाकर उसमें चार चाँद लगा दिये। कोर्ट में बकायदा स्वागत द्वार बनाये गये, तोरण पताकाएं लगायी गयी। कोर्ट कम्पाउन्ड में सभी लोग प्रभु का गुणगान कर रहे थे। पटना न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री हरिहर राय ने अपने पुरोहित पंडित से श्री प्रभु जी के पूजन एवं स्वागत की तैयारी खूब अच्छी प्रकार से करायी थी। वकील श्री श्याम नारायण प्रभु के आगमन की प्रतीक्षा में तल्लीन थे सब से यही कहते थे कि आप सब अच्छी प्रकार से उनकी आराधना करना जो वे कह देंगे वह अवश्य ही होगा। हमारे श्री गुरूदेव परम योग योगेश्वर हैं। परन्तु यह तथ्य किसी को पता नहीं था कि अनाथ नाथ आज कोर्ट क्यों देखने आ रहे हैं।

स्वतन्त्र ईश्वर श्री महाप्रभु जी अपने नियत समय पर पटना कोर्ट में आ पधारे। उनका पूजन तथा स्वागत करने के लिए मुख्य न्यायाधीश के पुरोहित थाल लिये आगे आये। पटना कोर्ट का पूरा प्रांगण प्रभु के जय–जय कारों से प्रतिध्वनित हो गया था। ज्योंही पुरोहित जी ने श्री महाप्रभु जी को तिलक लगाना चाहा, श्री मुख ने आदेश दिया तू ! मुझे तिलक न लगा क्योंकि तुझे कुष्ठ रोग है। ब्राह्मण बेचारा हक्का बक्का। मुख्य न्यायाधीश श्री हरिहर राय को जो एक नेक नीयत और ईमानदार जज थे, यह बात बहुत बुरी लगी। उन्होंने सोचा कैसा महात्मा है, हमारे पुरोहित को कुष्ठ रोगी कहता है। उनकी भावनाओं को देखकर श्री मुख ने आदेश दिया, पंडित जी ! ग्रहण में जज साहब से दान लेकर बिना उसका प्रायश्चित किये तुम ने उसका भोजन किया है। इसी पाप के परिणामस्वरूप तुम्हें कुष्ठ हो गया है। पुरोहित पंडित ने श्री चरणों में प्रार्थना किया कि प्रभु जी यह बात तो सत्य है कि जज साहब के ग्रहण दान के बिना प्रायश्चित किये मैंने पाया है परन्तु यह बात सत्य से परे है कि मैं कुष्ठ रोगी हूँ। श्री मुख ने आदेश दिया अरे ब्राह्मण ! अपना कुर्ता हटाकर अपनी पीठ देख ले या किसी से दिखा ले। पीठ में तुझे कुष्ठ रोग है। पुरोहित जी ने अपना कुर्ता हटाकर स्वयं अपने हाथ से स्पर्श किया तथा जिज्ञासावश और लोगों ने भी उसकी पीठ देखी और कहा कि कुष्ठ तो है। पंडित बेचारा अपना मुख लटकाये पूजा का थाल हाथ में लिये वहाँ से खिसक गया। सब लोग इस बात पर आश्चर्य कर रहे थे कि बिना अन्तर्ज्ञान के यह कैसे बतला सकते थे कि पुरोहित को कुष्ठ रोग है जज साहब भी मन ही मन यह विचार कर ही रहे थे कि श्री महाप्रभु जी ने उन्हें इंगित करते हुए कहा कि तुम भी कम पापी नहीं हो। न जाने कितने निर्दोष लोगों को मृत्युदण्ड व कारावास तुमने दिया है।

वकील श्री श्याम नारायण ने अपने कुछ साथी और सहायक वकीलों के साथ प्रभु का आरती पूजन किया। कचहरी में उपस्थित अन्य सभी आध्यात्मिक प्रेमियों ने श्री प्रभु जी का विधिवत आरती पूजन किया। सब लोगों द्वारा आरती पूजन कर लेने के बाद मुख्य न्यायाधीश श्री हरिहर राय ने प्रार्थना की, कि प्रभु मुझे एकान्त में आपसे कुछ प्रार्थना करनी है। वे प्रभुजी को अपने एकान्त कक्ष में ले गये और प्रार्थना की कि प्रभुजी मैंने कौन सा पाप किया है जो आप ने मुझे पापी कहा है। मैंने आज तक रिश्वत लेकर कोई न्याय नहीं किया है। मेरा क्या दोष है कृपया बताने का कष्ट करें। श्री मुख ने उपदेश दिया। तुम्हारे हाथ से परसों एक कत्ल के केस का फैसला होना है जिसमें एक निर्दोष ब्राह्मण बालक को तुम मृत्यु दण्ड दोगे। कत्ल तो उसी गाँव के राणा नामक जमींदार ने किया है परन्तु ब्राह्मण बालक नाहक फँसाया गया है। इस बात की सत्यता की जानकारी तुम अपने प्रकार से कर लो। मैं यह नहीं कहता कि तुम उसे सजा न दो, परन्तु यदि वह ब्राह्मण बालक निर्दोष है तो उसे सजा नहीं मिलनी चाहिए। इसी प्रकार अनेक निर्दोष लोगों को सजा दे देकर तुम पापी बन गये हो।

प्रभु का उपदेश सुनकर जज हरिहर राय महान आश्चर्य में पड़ गये। गवाहों के बयान से यह बात बिल्कुल निश्चित है कि परसों ब्राह्मण बालक को फांसी की सजा सुनानी ही पड़ेगी। केवल एक दिन का समय शेष है इन्क्वायरी किससे कराऊँ। उन्होंने प्रभु जी से प्रार्थना की, कि इसकी जाँच मैं स्वयं करूँगा। उनके इस आश्वासन पर प्रभु जी वहाँ से चलकर अपने प्यारे बच्चे वकील श्याम नारायण के साथ लौट आये। जज साहब भी बिना किसी केस को सुने अपने क्वार्टर आ गये। रास्ते भर सोचते रहे, सत्यता का पता कैसे चले ? सायंकाल अंधेरे में उन्होंने मूर्ख देहाती किसान का वेश बनाया। मारकीन का कुर्ता, मोटी धोती नकली मूंछ, छड़ी आदि लेकर बिना किसी को बतलाये कत्ल के गाँव में चले गये। वह जमींदार राणा के घर भी पहुँच गये। दरवाजे पर महफिल लगी थी तथा राणा बीच में बैठा था। जाते ही कृषक वेशधारी जज साहब ने कहा जै राम जी की बेटा, जैराम, जैराम। राणा उठकर, उनसे बैठने का अनुरोध करते हुए बोला—कहाँ से आये हो दद्दू। इन्होंने उत्तर दिया—अब तू क्या पहचानेगा बेटा। जब से भैया गुजर गये इधर आने का मन ही नहीं करता। भैया (राणा के पिता) हमारे लंगोटिया यार (मित्र) थे। राणा की आत्मीयता कुछ बढ़ी। फिर किसान वेशधारी जज ने कहा चलो एकान्त में बात करेंगे। उन्होंने कहा कि भैया से हम हमेशा रात में एकान्त में ही बात किया करते थे। एकान्त में जाकर उन्होंने कहा कि कहो बेटा ! क्या हाल चाल है, उसने कहा ठीक है। उसने कहा—अपना बताओ दद्दू। उन्होंने कहा क्या बतलाऊँ बेटा, भैया के न रहने से अपना जीवन भी अब अनाथ हो गया है। अब तो रह-रह कर वही बाते याद आती रहती हैं। भैया की खूब चलती थी। न जाने कितने कत्ल हम लोगों ने किये होंगे परन्तु आज तक किसी को कुछ पता नहीं चला। वह ठाकुरों का जमाना था। राणा ने भी अपनी तारीफ स्वयं आरम्भ की। बोला दद्दू उनकी चलायी परिपाटी आज भी चल रही है। करीब एक घण्टे के वार्तालाप के दौरान राणा ने स्वयं अपने मुख से यह बात कह दी कि दद्दू हमने अपनी पिस्तौल से अमुक आदमी को मारा था, परन्तु अपने पुराने दुश्मन ब्राह्मण को ऐसा फंसाया है कि पूछिये मत। एक भी गवाह उसके पक्ष में नहीं गया। परसों हरिहर राय जज को उस पंडित को मृत्युदण्ड देना ही पड़ेगा। उसकी फांसी के बाद हमारे सारे शत्रु एकदम साफ हो जायेंगे। सत्य तथ्य की जानकारी हो जाने के बाद कृषक वेशधारी जज ने बात को दूसरा रूप प्रदान किया। करीब आधे घण्टे तक और बात की और बोले अच्छा बेटा ! हम अब चलें। राणा बोला, दद्दू आज यहीं रुकिये यह भी तो आपका

ही घर है। उन्होंने कहा—बेटा ! घर पर तुम्हारे भाई इन्तजार कर रहे होंगे, जब तक हम नहीं जायेंगे सब खाना नहीं खायेंगे। राणा कुछ दूर पहुँचाने आया, उसने प्रार्थना की कि दद्दू ! कभी–कभी आ जाया करो। कृषक वेसधारी जज ने कहा—अवश्य, अवश्य अब मैं समय निकाल कर आया करूँगा। इतना कहकर जज साहब वहाँ से चले और वापस अपने घर आ गये। इनके मन में श्री प्रभु जी के इस अलौकिक चमत्कार को देखकर श्री प्रभु जी के प्रति अपार श्रद्धाभाव उत्पन्न हो गया। वे श्री प्रभु जी की बातों को बार–बार याद कर रहे थे कि नाहक बेचारा ब्राह्मण फाँसी के फन्दे पर लटक जाता। इन्होंने श्री प्रभु जी को मन ही मन कोटि–कोटि धन्यवाद दिया जिनकी कृपा के कारण वे एक पाप करने से बच गये।

श्री हरिहर राय जज ने दूसरे दिन इस केस के फैसले (निर्णय) का कागज अपने घर पर ही तैयार किया। तीसरे दिन अपने न्यायालय जाकर फैसला किया। विधवा ब्राह्मणी के बालक को अपने स्पेशल अधिकार का प्रयोग करते हुए इस अभियोग से बिल्कुल मुक्त कर दिया। फैसला सुनाने के तत्काल बाद अपनी कलम तोड़ दी तथा मुख्य न्यायाधीश पद से इस्तीफा देकर अकारण दयालु परम योग योगेश्वर करूणानिधान श्री महाप्रभु जी के श्री चरणों में उपस्थित होकर प्रणाम किया।

दादा गुरूदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के चरण कमलों में साष्टांग प्रमाण निवेदित करने के बाद श्री हरिहर राय जज सामने फर्श पर बैठ गये। उनके अन्दर कुछ कहने की उत्कंठा बार–बार हो रही थी परन्तु वे कह नहीं पा रहे थे। उनके इस चिन्तामय मुखाकृति को देखकर श्री महाप्रभु जी ने प्रश्न किया, अरे लल्ला। क्या कहना चाहते हो ? जज श्री हरिहर राय ने प्रार्थना की कि प्रभु जी मुझे पूर्ण योगी बनाने की कृपा की जाय। उनकी प्रार्थना सुनने के बाद भी प्रभु जी ने कहा, हाँ लल्ला, हम अवश्य ही तुम्हें योगी बनायेंगे परन्तु इस समय नहीं, इस समय तुम परम सत्ता ईश्वर का स्मरण चिन्तन करते हुये अपनी नौकरी करो, अपने परिवार का पालन–पोषण करो, समय आने पर हम तुम्हें योगदीक्षा देकर, साधना करायेंगे एवं तुम्हें पूर्ण योगी बना देंगे। त्रिकालदर्शी दादा गुरूदेव श्री प्रभु जी जज हरिहर राय के योग संस्कारों को देखकर उन्हें वास्तविकता बता रहे थे परन्तु जज हरिहर राय को लग रहा था कि श्री प्रभु जी हमें टालना चाहते हैं। अतः उसने कहा कि प्रभु जी शुभकार्य शीघ्रातिशीघ्र करना चाहिये अतः मैं इस्तीफा देकर आप के चरणों में दीक्षा लेने तथा योगी बनने आया हूँ। आप हमें आज इसी समय योग दीक्षा देने की कृपा करें। श्री मुखारविन्दु ने कहा कि लल्ला ! तुम्हारे बाल–बच्चों एवं अपने परिवार के दायित्व का भार तुम्हारे ऊपर है, इस समय तुम उनका विधिवत पालन करो, अपनी नौकरी करो, तुम हमारी बात पर विश्वास रखो, मैं तुम्हें योगी अवश्य ही बनाऊँगा। श्री प्रभु जी अनेक प्रकार से समझाते रहे परन्तु श्री हरिहर राय अपनी जिद्द पर अड़े रहे। इतने में जज साहब की पत्नी भी अपने बच्चों के साथ वहाँ आ गयीं एवं उसने पूरे समुदाय के साथ प्रभु चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। उस समय श्री प्रभु जी ने कहा कि हरिहर राय ! यदि तुम्हारी धर्मपत्नी तुम्हें साधना करने हेतु एकान्त में जाने की बात की सहमति दे दे तो मैं तुम्हें अभी योगदीक्षा दे दूँ। श्री हरिहर राय जज प्रसन्नता वश अपनी पत्नी से एकान्त में जाने की स्वीकृति माँगने गये तो उसने इन्कार कर दिया। उसके इस कार्य से हरिहर राय जज बहुत दुःखी हुये। वे प्रभु चरणों में उस दिन से उपस्थित रहे।

***

योग ही परम श्रेयस्कर है।

डा० स्वामी केशवाचार्य

सद्गुरु, भक्त, भक्ति और भगवान एक ही तत्व की चतुर्थी स्थिति है। श्री सद्गुरुदेव की कृपा से भक्त संग की प्राप्ति होती है, अथवा भक्त के संग से प्रेम भक्ति प्रदान करने वाले श्री सद्गुरुदेव के चरणों का आश्रय प्राप्त होता है। श्री गुरु के चरणों का आश्रय लेने पर ही योगी साधक के संग–प्रभाव से भक्ति योग की प्राप्ति होती है। सुदुर्लभा, क्लेशघ्नी (क्लेशों का नाश करने वाली)। शुभदा, मोक्ष को लघुता प्रदान करने वाली, ब्रह्मानन्द से भी अधिक सुख देने वाली एवं श्री कृष्ण को आकर्षित करने वाली शुद्धाप्रेम भक्ति के उदय होने पर भक्ति के स्वरूप, भगवान के स्वरूप तथा भक्त के स्वरूप का परिचय प्राप्त होता है। किसे भक्ति कहते हैं ? भक्ति किसकी करें ? भक्ति ही क्यों करें ? इन प्रश्नों का समाधान होने पर हृदय निरुपाधि प्रेम से पूर्ण हो सकता है।

वेदान्त विचार में पहले सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन और अधिकारी—इन चारों का विचार किया जाता है। प्रेम भक्ति योग के सम्बन्ध में भी तद्नुरूप अनुबन्ध—चतुष्टय का जानना आवश्यक है। प्रथम है—सम्बन्ध तत्व। प्रेम भक्ति देवी का निगूढ़तम सम्बन्ध श्री भगवान के साथ है। श्री सद्गुरुदेव का आश्रम प्राप्त करने के पश्चात् उपासना के पूर्वांगस्वरूप उपास्यदेव का साम्मुख्य प्राप्त करने की चेष्टा करनी पड़ती है। इस प्रकार उपास्य देव के सम्मुख होना ही उपासना का पूर्वांग है। इस साम्मुख्य का श्रेष्ठतम उपाय है—भक्तियोग। भक्तियोग सन्दर्भ में भक्तियोग के तीन प्रकार वर्णित हैं—आरोपसिद्धा, संगसिद्धा और स्वरूपसिद्धा। भक्तित्व का अभाव होने पर भी भगवान को अर्पण आदि जिन कर्मों के द्वारा भक्तित्व की प्राप्ति होती है, उन कर्मों को ही **''आरोपसिद्धा''** भक्तियोग कहते हैं। भक्ति के परिवार के रूप में जो कार्य किये जाते हैं उनको **''संगसिद्धा''** भक्तियोग कहते हैं। स्वरूपसिद्धा भक्तियोग वह है जो स्वतः भक्तिरूप में प्रसिद्ध है। श्रवणकीर्तनादि नवधा भक्ति ''स्वरूपसिद्धा'' भक्तियोग है। 'भक्तिसन्दर्भ' ग्रन्थ में इसके सिवा अनेक भेदोपभेद सहित भक्तियोग का वर्णन किया गया है। उपरोक्त तीनों प्रकार की भक्ति बहुत सरल भी नहीं है। यदि बहुत सरल कहा जाय तो यह भूल होगी।

जब भक्तियोग सरल नहीं है और श्रुति से सम्मत भी नहीं है, तब फिर वह है क्या ? मेरी निज सम्मति में इस प्रश्न का उत्तर 'पातंजलि योग दर्शन' में मिलता है। जो 'परानुरक्ति' की बात कही गयी है—उसका आधार महर्षि पतंजलि के ये चार सूत्र हैं—

'वीतरागविषयं वा चित्तम्'। 'ईश्वर प्रणिधानाद्वा'।
'तस्यवाचक: प्रणव:।' तज्जपस्त दर्शभावनम्।'

जैसा कि श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि योग भ्रष्ट पुरुष अर्थात् जो योग में ऊँची गति प्राप्त कर चुका होता है, परन्तु पराकाष्ठा तक पहुँचने के पहले ही शरीर छोड़ देता है, वह पवित्र श्रीमानों के घर जन्म लेता है—

शुचीनां श्रीमतां गेहे योग भ्रष्टोऽभिजायते।
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।।

अथवा जन्म से ही उसकी प्रवृति योग की ओर होती है और या तो अपने पैतृक–कुल में या प्रातः स्मरणीय अनन्त श्री विभूषित श्री महाप्रभु (श्री रामलाल जी महाराज) जी के शिष्य–कुल में दीक्षित होकर वह शीघ्र ही अपना काम पूरा कर लेता है। ऐसे व्यक्ति को चित्त की धारणा के लिए कोई छोटा सा बहाना मात्र चाहिये।

ऊपर दिये हुए पातंजलि–सूत्र ऐसे कुछ आधारों की चर्चा करते हैं। परन्तु ये उपाय किसी प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद श्री सद्गुरुदेव भगवान (श्री चन्द्रमोहन जी महाराज) जैसे महायोगिराज के लिए ही चरितार्थ होते हैं। सामान्यतः मोक्ष के अधिकारी के लिए अष्टांग योग मार्ग के सिवा दूसरी गति नहीं है। उसमें यमों का नाम अत्यन्त महत्व का है। जहाँ पूर्व जन्म के महातपस्वी को यम स्वयंसिद्ध होते हैं, साधारण साधक को इनके लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता है। वह आगे बढ़ता है, परन्तु फिर कोई त्रुटि उसको पीछे खींच लेती है। कबीर के शब्दों में–

कहत कबीर टुक बाग ढीली करे।
उलटि मन गगन से जमीं आयौ।।

उसको नियमों का भी बहुत अभ्यास करना पड़ता है। साथ ही नियमों में ईश्वर प्रणिधान की भी गिनती है अकेला 'ईश्वर प्रणिधान' पर्याप्त नहीं है। जब वह यमों और दूसरे नियमों के साथ अभ्यास का विषय बनाया जाता है। तभी वह कल्याणकारी होता है। 'ईश्वर प्रणिधान' के बिना भी योग का अभ्यास हो सकता है। परन्तु उसमें कभी–कभी पतन की आशंका होती है। 'ईश्वर प्रणिधान' इस दोष का परिहार कर देता है। इसलिए श्री कृष्ण ने गीता में कहा है–

तपस्विभ्योऽधिकोयोगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिकोयोगी तस्माद् योगीभवार्जुन।।
योगिनामपि सर्वेषां द्गते नान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमोमतः।।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि 'भक्तयोग नाम का मोक्ष के लिए कोई स्वतन्त्र साधन नहीं है। वह या तो 'ईश्वर प्रणिधान' का नाम है और या योगाभ्यास की क्रिया का। धारणा के लिए अनेक आलम्बन हो सकते हैं, जिनमें से कुछ का उल्लेख विभिन्न विद्याओं के नाम से उपनिषदों में आया है, और भी अनेक प्रकार के अवलम्बन हो सकते हैं। वीतराग पुरुष के रूप में साधक अपने उपास्य या सद्गुरु को धारणा का सहारा बना सकता है किसी भी अभीष्ट मन्त्र का जप कर सकता है। अथवा उन उपायों से काम ले सकता है जिनकी दीक्षा सुरत–शब्द–योग के सद्गुरुओं ने दी है। किसी भी अवलम्बन का सहारा लिया जाय, परिणाम एक ही होगा, अनुभूति एक ही होगी। यदि भक्ति योगाभ्यास का दूसरा नाम नहीं और योग–दर्शनोक्त ईश्वर प्रणिधान का दूसरा नाम नहीं है तो वह मृग–मरीचिका है। प्राचीन बातों को असाध्य बताने और आजकल के मनुष्यों को दुर्बलता का पाठ पढ़ाने का पिछले कुछ सौ वर्षों में इस देश में पर्यावरण छा गया है। दुर्बल को लकड़ी का सहारा चाहिये ही। मार्ग तो एक ही प्रशस्त योग–मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं है। परन्तु जिसको बार–बार दुर्बल कहा गया, उससे इस कठिन मार्ग पर चलने के लिए कैसे कहा जाय। इसलिए 'भक्तियोग' नाम प्रचलित हुआ। जो सच्चे साधक थे उनकी तो

कोई क्षति नहीं हुई। नाम भले ही नया हो किन्तु वस्तु वही पुरानी थी। वही चिर–अभ्यस्त सनातन काल से परीक्षित 'रामबाणवत्'—मूल औषधि थी। उन्होंने उसी को ग्रहण किया और निःश्रेयसपद को प्राप्त किया। परन्तु साधारण साधक धोखे में पड़ा रह गया। उसका अकल्याण हुआ दुर्बल बताकर सन्मार्ग से तो वह हटा दिया गया और दूसरा कोई मार्ग है नहीं इसलिए भटकता रह गया।

मेरा यह दृढ़ मत है कि मोक्ष के लिए केवल वही एक मार्ग है, जिसका उपदेश यम ने नचिकेता को दिया था। नचिकेता ने श्रवण और मनन द्वारा वेदों के सिद्धान्तों को ग्रहण किया और निदिध्यासन की अवस्था में 'योग' का अभ्यास किया। भले ही किसी आग्रह के कारण 'योग' शब्द का बहिष्कार करके इसको भक्ति नाम से कहा जाय, परन्तु योग से भिन्न भक्ति नाम का कोई दूसरा साधन नहीं है। किसी दूसरे साधन पर विश्वास करना जन्म–जन्मान्तर के लिए अपने को दुःख में डालना है। योग के द्वारा ही चित्त के मल, विक्षेप और आवरण दूर हो सकते हैं। और जीव अपनी शुद्ध–बुद्धि स्वरूप में स्थित हो सकता है। एक और बात है, जब तक 'अहमन्यः अयमन्यः' का भाव बना रहेगा, कितनी ही झीनी क्यों न हो जाय द्वैत प्रतीत बनी ही रहेगी। तब तक मोक्ष नहीं हो सकता। जहाँ तक भक्ति की बात है, उसमें द्वैत भाव निश्चयरूप से निहित है। बहुत से भक्तों ने किसी न किसी रूप में यह कहा है कि हम मोक्ष नहीं चाहते, अनन्त काल तक भगवान के सौन्दर्य के आनन्द का अनुभव करते रहना चाहते हैं। यह अनुभव कितना भी सुखद क्यों न हो, द्वैत मूलक है। और—

''यत्र द्वैतं तत्र भयम्॥''

अतः उपनिषद् प्रोक्त साधन ही जीव के लिए पूर्ण कल्याण का देने वाला है।

''नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय''।

मैं नम्रता पूर्वक निवेदन करना चाहता हूँ कि जिन लोगों को ईश्वर के प्रति परानुरक्ति प्राप्त हो भी जाएगी, उनको जीव–मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती गीता के अनुसार जीव शरीर त्याग के समय जिस भाव का स्मरण करता है, उसी को प्राप्त होता है। भगवान की भावना करने वाला भगवान को तो प्राप्त हो, मोक्ष को नहीं। कितना ही हल्का क्यों न हो, जीव और ईश के बीच में परदा रहेगा। यह ध्यान देने की बात है कि भक्ति मार्ग के पोषक द्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी या द्वैताद्वैतवादी रहे हैं। शुद्धाद्वैत वादी का ब्रह्म अपनी लीला से जगत रूप में आता है। और अपनी इच्छा मात्र से इस लीला का संवरण करता है प्रपन्न जीव उसके साथ अपनी तात्विक अभिन्नता को जानते हुए भी इस लीला का आनन्द लेना चाहता है। लीलामय भगवान के साक्षात्कार से उसमें अपूर्व रस की निष्पत्ति होती है।

''रसौ वै सः''

इस न्याय के अनुसार रसानुभूति ही भगवत्साक्षात्कार है। अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार—और मेरी बुद्धि इसी को स्वीकार करती है। ये सारी बातें मोक्ष के नीचे की कोटि की है। ईश्वर या परमात्मा चाहे जिस नाम का प्रयोग किया जाय, वह माया सबल ब्रह्म है; शुद्ध ब्रह्म नहीं। शुद्ध मोक्ष की अवस्था में जीव और ईश्वर दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। रस का प्रश्न ही नहीं उठता। जहाँ द्वैत नहीं है, वहाँ कौन किसको देखे ? कौन किसके साक्षात्कार

का आनन्द लें। आचार्य शंकर के कथनानुसार 'परमात्मपद' तक पहुँचे हुए जीव सुदीर्घ काल तक उस अवस्था में रहते हैं, जिसको ब्रह्मलोक कहते हैं। कालान्तर में उनके माया रूपी आवरण का क्षय हो जाता है। और तब उनको पूर्ण मोक्ष की प्राप्ति होती है। भक्ति मार्ग पर चलने वाला अपने को योगी कहे या न कहे, परन्तु वह योग पथ पर ही चल रहा है। अतः उसको वे सब अनुभूतियाँ होती है, जो योगी को होती है। यहाँ तक कि सिद्धियाँ भी प्राप्त होती है, परन्तु वह ऐसा नहीं कहता और उसको ऐसा प्रतीत भी नहीं होता कि मुझमें सिद्धि है। उसको तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह स्वयं निमित्त मात्र है। जो कुछ करता है उसकी आड़ में उसका उपास्य करता है।

ना कुछ किया, न कर सकें, करिबे जोग सरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया, होत कबीर कबीर।।

योगी को विभूतियाँ प्राप्त होती है। जिस अवस्था में वह इस भूमिका में प्रवेश करता है, उस समय एक डर रहता है। पतंजलि ने कहा है कि न तो संग करना चाहिये न तो स्राव। दोनों अवस्थाओं में पतन की आशंका है तात्पर्य यह कि न तो सिद्धि शक्तियों से काम लेना चाहिये और न अभिमान का भाव ही आना चाहिये कि मैं इतना बड़ा हो गया कि ऊँचे लोकों की दैवी शक्तियाँ मेरे चरणों पर लौट रही है भक्त इस भयस्थल को सुकरता से पार कर जाता है, क्योंकि उसको यह अभिमान हो ही नहीं पाता कि मैंने कोई बड़ा काम कर लिया है। इस दृष्टि से भक्तिमार्ग में कोई अच्छाई है। परन्तु सभी योगियों का इस जगह पतन नहीं होता। वह परम पूज्य श्री सद्गुरुदेव भगवान श्री (चन्द्र मोहन जी महाराज) जैसे सद्गुरुदेव की कृपा से इसे भी पार कर जाता है। और उसको पार करने में शक्ति का जो उद्बोधन होता है, वह आगे के मार्ग को और भी प्रशस्त कर देता है। यह मार्ग कुछ हद तक कण्टकाकीर्ण होते हुए भी समझ बूझ कर योग का ही अवलम्बन करना सर्वथः कल्याणकारी है, श्रेयस्कर है। इसलिए योगयोगेश्वर भगवान श्री महाप्रभु जी एवं श्री सद्गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के कृपा प्रसाद को प्राप्त कर योग परक निष्ठावान होकर संसार सागर को पार करते हुए आत्म कल्याण करते हुए चिर शान्ति को प्राप्त करते हुए परमात्मा में एकीकृत भाव से अद्वैत सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हुए उस अखण्ड ब्रह्म में लीन हो जाना ही परम श्रेयस्कर है। मेरा तो यही विश्वास है कि श्री सद्गुरुदेव जी ने जो मार्ग दिया है उसी पर हम चल कर लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते है। और मझे ऐसा लगता है कि सद्गुरुदेव भगवान भविष्य को देखते हुए ही (दूसरा कोई अन्य मार्ग नहीं है) हम सबों को सरल सहज योग मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित एवं आदेश करते रहें।

मेरे सद्गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अत्यन्त कृपा सागर है। श्री सद्गुरुदेव आज भी हम सबों को वही योग मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं।

***

पानी पीओ छान के गुरु बनाओ जान के

—अंशुमान देव मालवीय (वाराणसी)

मनुष्य का जन्म बहुत ही बड़े भाग्य से होता है। इस बात को आज के अधिकांश लोग नहीं मानते है मगर इस तथ्य को मानना ही होगा चूंकि सारा ब्रह्माण्ड इस तथ्य से वाकिफ है कि मनुष्य का तन बड़े ही भाग्य एवं पुण्यों के संचय से मिलता है और यदि इस शरीर को हम ईश्वर के ध्यान, तप और काम में नहीं लगायें तो हमारा इस संसार में आना और न आना बराबर है। लेकिन पहले हम सभी सुयोग्य एवं श्रेष्ठ पुरुषों को यह बात जाननी होगी कि मै कौन हूँ मेरा जन्म किस कार्य को करने के लिये हुआ है मेरा मूल अस्तित्व क्या है। मै कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? और कहाँ जाँऊँगा ? लेकिन इन सब प्रश्नों का उत्तर तो कोई भी साधारण पुरुष दे नहीं सकता। इसका तो उत्तर एक असाधारण असीम शक्ति वाले एवं असीम कृपा करने वाले गुरु ही इन सभी प्रश्नों एवं सभी शंकाओं का समाधान कर सकते हैं। मगर इस युग में गुरु की संख्या अनगिनत है, पर उनमें से वह हीरा जिसे हम सद्‌गुरु कहते है वह सद्‌गुरु मिलना बहुत दुलर्भ एवं कठिन काम है। और सद्‌गुरु कहीं पड़े तो मिलेंगे नहीं यह तो अपने ही संस्कार एवं पुण्यों के संचय से ही गुरू से भेंट होती है। मगर भेंट हो जाने पर अगर हम अपने गुरु की आज्ञा का पालन न करें तो गुरु मिलें या न मिलें सब बराबर है। लोगों की जुबान पर अक्सर यह कहावत रहती है कि ''पानी पीओ छान के गुरु बनाओ जानके'' इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य को गुरु सोच–समझ और जान कर बनाना चाहिए अन्यथा उस शिष्य को साधन जगत् में सफलता नहीं मिल पायेगी।

श्रेष्ठजनों का मानना है कि गुरू की चरण–शरण में जाने से पहले मनुष्य को अपनी तमाम बुरी आदतों को छोड़ना होगा और नियम संयम का पालन साधन जगत् में करना एक अहम् साधक की जिम्मेदारी है क्योंकि अगर मनुष्य नियम और संयम से नहीं रहेगा तो वह योग साधना नहीं कर सकता।

अक्सर यह देखने को मिलता है कि लोग मन्दिर में भगवान से अपने दुःखों को दूर करने की प्रार्थना करते है मगर मनुष्य यह नहीं जानता कि जो दुःख वह भोग रहा है वह उसके ही किसी पाप कर्म का फल वह भोग रहा है। मनुष्य मंदिर में जाकर भगवान से अपने दुःखों को दूर करने की जगह अगर वह अपने लिये भगवान से सद्‌बुद्धि मांगे कि हे प्रभु मेरे से ऐसी कोई गलती न हो जिससे किसी अन्य को परेशानी हो मेरी वजह से। मगर आज मनुष्य इसके विपरीत चलता है और अगर मनुष्य को सद्‌बुद्धि एवं सन्मार्ग कोई दिखा सकता है तो वह है सद्‌गुरु मगर मनुष्य अपने पाप की वजह से गुरु के पास नहीं जाता है। जिसके कारण मनुष्य अपना पूरा जीवन दुःख मे बिताता है क्योंकि वह सत्कर्म कभी करता नहीं है। गुरू अपने शिष्य की भलाई के लिये अपना सब कुछ न्यौछावर कर देते है मगर शिष्य उनके लिये कुछ भी नहीं करता यहाँ तक की उनके बताये हुये सद्‌मार्ग पर भी नहीं चलता जो कि शिष्य की ही भलाई के लिये गुरू ने उसे बताया था।

आप सभी सुयोग्य पाठकों से मेरा नम्र निवेदन है कि लेख की त्रुटियों को न ध्यान देते हुये इसके पवित्र भावों को ग्रहण करने की कोशिश करें एवं परम प्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं परम प्रभु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज को एकमात्र सहायक मानकर उनका आरती पूजन एवम् कृपा चरित्र वर्णन सदैव करते रहना चाहिए।

***

सद्गुरू प्रदत्त साधना क्रम

डा० विजय सिंह

कोई–कोई साधक कहते है ध्यान की धारणा में इष्ट का दर्शन तो नहीं होता है परन्तु उनकी जगह अपने सद्गुरु देव जी का ही दर्शन होता है। यहाँ गहराई से विचार करना है। इष्ट का कल्पित दर्शन, जो शास्त्र वर्णित है क्या उससे सर्वोत्तम स्वानुभूत सद्गुरू स्वरूप श्रेष्ठ नहीं है ? सर्वथा है। जिनके अंग–संग का सानिध्य प्राप्त हुआ। जिनकी कृपा किरण के तेज से मन में एकाग्रता धर्म उदय हुआ। उन कृपालु ने स्वयं अपनी चित्त निर्वापित स्वरूप का हमारे चिदाकाश में नियोजन कर दिया है। ऐसे देवाधि देव महादेव के भी पूज्य परम कारुणिक परम शिव:स्वरूप सद्गुरू के दर्शन जिन्हें होते हों उन्हें अपना परम सौभाग्य समझना चाहिए। प्रभु ने उस जीव को स्वयं अपना लिया है अत: पूर्ण भावरूप में अपने अन्तरंग में श्री गुरु–पूजन की अवधारणा करनी चाहिए। यह स्वयं में एक गुह्य साधना है। सहजोबाई, कबीर, ज्ञानदेव, प्रभृति महासंतो ने इस साधना का जहाँ–तहाँ यथा–तथा प्रकाश किया है। हिमालय के सिद्धों द्वारा बताई गयी इस साधना प्रक्रिया का थोड़ा ब्योरा पाठकों के हेतु दिया जा रहा है जो इस विधि का अनुशासन अपनी साधना में करेंगे उन्हें अवश्य–अवश्य उत्कर्ष प्राप्त होगा।

सद्गुरु में दृढ़ विश्वास के साथ साधक प्रथमत: श्री सद्गुरु स्वरूप को साधना कक्ष में उत्तम स्थान पर स्थापित कर यथा नियम भक्तिपूर्वक गंध पुष्पादि द्वारा, नाना उपचार से साध्यानुसार पूजा आरती स्त्रोत पाठ नियमानुवर्तिता से करें।

ऐसा करने पर किसी किसी को आरम्भ में दैहिक क्लेश, मानसिक चांचल्य, विषयी चिंता इत्यादि उत्पात होंगे। इससे विचलित न होकर साधक उपरोक्त वर्णित क्रम में उपासना, मंत्र–जप करता रहे। आरती पूजन के पश्चात् आसनस्थ होकर श्री सद्गुरू चित्त की ओर एक दृष्टि होकर कुछ क्षण देखे और मन ही मन मंत्र–जप करते रहना चाहिए।

सांसारिक कामों में व्यस्त रहते हुये मन ही मन गुरू–मंत्र जप करते हुए श्री सद्गुरु चरण का चिंतन अनन्य भाव से करता रहे। एकान्तिक अवस्था में क्रमश: चरण से लेकर मुखमण्डल के ऊपर तक ध्यान की चेष्टा करे। फिर विलोग क्रम से मुख मंडल से चरण युगक तक का ध्यान करें। इस ध्यान धारणा क्रम का अभ्यास कभी बंद न हो। ऐसा करने से भाव दृष्टि होगी और इससे प्रगाढ़ता से आगे की अधिकारिक अवस्था प्राप्त होगी।

अब सहज रूप से एक साथ श्री सद्गुरू कि पूर्णांग–रूप–चिंतन जप ध्यान सहित करना चाहिए। अभ्यास की प्रगाढ़ता से नादोत्पत्ति शुरू होगी। कान में अविरल साँय–साँय शब्द, शंख घोष, घंटा ध्वनि, दूर बजता वंशीरव सुनाई पड़ेगा। उसके फलस्वरूप अश्रु, कंपन, पुलक इत्यादि लक्षण देह में आविर्भूत होने लगते है। इन्हें कोई रोग समझकर विशादग्रस्त नहीं होना चाहिए, अपितु उत्तम साधनात्मक लक्षण समझ आनन्द अनुभव करें। पुन: सोच लें। अबाधित जप ही इसकी सिद्धि का प्रमाण है। ऐसा करते हुए श्री गुरुमूर्ति का पूर्णांग रूप मानस पट पर स्थायी भाव से रखे। ऐसा होने पर मानस एकाग्रता सफलीभूत हुई ऐसा जानना चाहिए।

इस क्रम के पश्चात ध्यान एवं अबाध जप करते–करते स्वदेह सद्गुरु को समर्पित करें। बहुधा प्रथमत: अचानक अपने काया में सद्गुरू काया का भान होने लगता है। अब देह की प्रत्येक क्रिया श्री गुरुदेव की इच्छा समझकर व्यवहृत करे। अंतर में सर्वदा गुरूमूर्ति का दर्शन करता रहे। इससे स्वत: सुषुम्ना व्यापार व्यवहृत होना

शुरू हो जायेगा। षट–रिपुओं का जोर लुप्त होता जायेगा। मन शांत होकर सहज प्रसन्नता लाभ करेगा। इससे देह में आत्मबुद्धि विकसित होगी। अभिमान, अभिनिवेश घटती जायेगी। रह–रह कर श्री सद्गुरु भाव का स्फुरण तथा श्रद्धा एवं विश्वास का बाहुल्य होगा। ऐसा होने पर सद्गुरु कृपा से उनकी अखण्ड चिन्मयता उसके हृदयाकाश में प्रकट होगी। साधक के चित्त पर सद्गुरु के विराट चित्त का सहज अवतरण होने लगेगा। गुरु शक्ति से अभेदत्व के साथ एकत्वभाव जागरित होगा। साधक अब स्वयं को मुक्त हुआ समझे। धर्माधर्म, पापपुण्य, सुख–दुख अब से विचलित नहीं कर सकेंगे। अखण्ड नाम जप चिदाकाश में स्वयं स्फुटित होता सुनाई देगा। गुरुध्यान परिपाक होने पर देह–बोध जाता रहेगा। ऐसी गुणातीत अवस्था एवं शांभवी–मुद्रा स्वयं सद्गुरु कृपा से प्राप्त होती है। कहा जाता है कि इस अवस्था के परिपाकांत मे साधक देह में श्री गुरु आवेश आता है। शिष्य द्वारा सद्गुरु अलौकिक कार्य सम्पन्न कराते हैं। इस क्षमता, इस सामर्थ्य को अपना समझने से अनिष्ट हो सकता है। आगे की स्थिति अवरुद्ध हो जाती है अत: साधक को इस विषय में सावधान रहना चाहिए।

अब गुणातीत अवस्था को पार करके साधक ऐसी अवस्था में रहता है जहाँ वह होता ही नहीं, अपितु सद्गुरु शक्ति के ही द्वारा सर्व कर्म सम्पादन होता रहता है। अब साधना एवं उसका संस्कार भी जाता रहता है। अखण्ड भाव प्रकाश कृत–कृत्यता एवं दिव्य रसात्मक भाव अनुगत रहता है। अब केवल सद्गुरु सत्ता का ही खेल चलता रहता है। इस दशा के हेतु कहा गया है–

''नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं सिद्धिसाध्यता''।

जीव अब जीव नहीं रहा, अब ईष्ट रूप में प्रतिष्ठित होकर चिन्मय–रस–विग्रह सच्चिदानन्द स्वरूप हो गया। इस सिद्धयोग की साधना में गुरु कृपा से जगी शक्ति का रक्षण सावधानी पूर्वक करना चाहिए। गुरू निष्ठा सत्संगति, सुविचार, सत्यनिष्ठा साधक में होना चाहिए। यह साधना गुरु सन्तोष से ही सिद्ध होता है। सद्गुरु के प्रति जैसा भाव होगा वैसी ही उपलब्धि भी होगी। स्वामी मुक्तानन्द की सम्पूर्ण साधना उपरोक्त क्रम में ही रही है। उनका अनभुत निष्कर्ष है कि–

यो गुरु: स शिव: प्रोक्तो य: शिव: स गुरु स्मृत:।
उभयोरन्तरं नास्ति गुरोरपि शिवस्य च।

इनका कथन है–हे गुरुदेव 'सोऽहं' आप का दिया ध्यान मंत्र है जो सहज ही धारणा को स्थिर करने वाला है। इससे ही मेरे साधन यज्ञ की पूर्णाहुती हुई। परम तृप्त हुआ। ''सोऽहं'' ही हो गया। यह केवल गुरु प्रसाद ही नहीं, वरन् सद्गुरु ने स्वयं ही ''सोऽहं'' के द्वारा मेरे अन्दर प्रवेश करके मेरे समस्त पातकों को भस्म कर दिया। भक्त को धो दिया, जीव को शिव बनाया। ऐसे चितिमय परम गुरु मंत्र द्वारा, स्पर्श द्वारा, दृष्टि द्वारा शिष्य में प्रवेश करते हैं। अत: गुरु–आश्रमवास, गुरु–प्रसाद गुरु–सेवा, गुरु–गुणगान में शिष्य को शिथिल नहीं होना चाहिए। वो परिपूर्ण गुरुदेव, सदैव अपने अखण्ड चिति प्रभा की किरणों को शिष्य के कल्याणार्थ स्पन्दित करते ही रहते हैं। शिष्य को जागरूक रहकर साधना द्वारा अपने अन्तर जगत् में उन चिदागुणों को ग्रहण करना चाहिए। सद्गुरु की महिमा महान है–यथा हठयोग प्रदीपिका में कहा है–

दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्वदर्शनम्।
दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरो: करुणां विना।

सहजा अवस्था सद्गुरु से युक्त हुये बिना उनकी कृपा से ही प्राप्त होगी।

***

कला के उद्भव में सिद्धयोग का योगदान

—कु० राजकिशोरी सिंह,

आज कला और कलाकार की स्वतन्त्रता पर समाज एवं संस्कृति के संदर्भ में प्रश्नचिन्ह लगा हुआ है। क्या सत्यम शिवम् सुन्दरम् से परे भी कला धर्मिता समाजग्राही हो सकता है या नहीं ? यथार्थतः कलाकार की स्वतन्त्रता व उसकी चेतना के अन्तर्निहित तथ्यों को उजागर करने के लिए हमें पुनः कुछ मौलिक तथ्यों की जानकारी करनी होगी। क्योंकि भारतीय परम्परा का रूझान स्वयं के भीतर अपने चित्त स्वातंत्र्य एवं चिति सामर्थ को जानने तथा जगाने की ओर रहा है।

एक कलाकार अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को चित्र या मूर्ति रचना में साकार करता है। इसीलिए कला की स्वायत्ता विराट को उद्घाटित करने में है न कि क्षुद्र अशिव भावों को मूर्तिमान करने में, मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने अपने अनुसंधान में इस प्रकार के विचार वाले कलाकारों को मनोरोगी बताया है। क्या यह यथार्थ के निकट है ? इस प्रश्न पर भी गहराई से विचार करना होगा।

दार्शनिक प्लेटो का मानना है कि कला कर्म हमारी वासनाओं को प्रस्फुटित करता है और एकदम अनियंत्रित बना देता है। इसलिए उसकी माँग थी कि कला समाज व नैतिकता से बद्ध होना चाहिए।

भारतीय कला और वास्तुकला के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वान फर्गुसन, स्मिथ, कुमारस्वामी व पर्सीब्राउन के लिखे हुए ग्रन्थ जो कि वर्णनात्मक हैं, उनमें भी कला के गूढ़ अर्थों पर उद्भव की दृष्टि से विचार नहीं किया गया है। हमारी समझ से कला के उद्भव स्रोत कलाकार की चित्त—दशा तथा संस्कार संवेदनाओं पर ही निर्भर हैं। अतः चित्त और चिती के स्वरूप को समझे बिना भारतीय कला कृतियाँ कैसे अस्तित्व में आयीं इसका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। इन चित्त वृत्तियों और संस्कारों का स्वरूप संधान योग में किया गया है। योग साधना गहराई में प्रकृति एवं आत्मा के अनुसंधान का विज्ञान है। जो वैदिक काल से लेकर आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है। योग की परिभाषा **''योगश्चित्त वृति निरोधः''** अर्थात् वृत्तियों का निरोध ही योग है।

अतः मैं यहाँ कला पर योग व सिद्धयोग के प्रभाव की समीक्षा करते हुए उपरोक्त प्रश्नों का समाधान देना चाहती हूँ। सर्वप्रथम सिद्धयोग क्या है यह समझ लेना समीचीन होगा। सिद्धयोग से सम्बन्धित ग्रन्थों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि सन्त और सिद्धों के अनुग्रह से सामान्य मनुष्य के जीवन में भी अन्तर्भूमिकायें स्वयमेव जाग्रत होती है। दीक्षा के अनेक प्रकारों का वर्णन जहाँ आया है वहीं कलावती दीक्षा की भी चर्चा है। दीक्षा का तात्पर्य ''दीयते ज्ञानं क्षीयते प्रकाशावर्णम्'' है। सिद्धमार्ग में शक्तिपात के द्वारा व्यक्ति में सुप्त कुण्डलिनी शक्ति पूर्ण जागृत की जाती है। इस मार्ग की विशिष्टता यह है कि व्यक्ति के लिए जो आवश्यक है वे अनुभव बिना प्रयास के उसे अपने आप होने लगते हैं और व्यक्ति की पात्रता के अनुसार चितुशक्ति उसके अन्दर कार्य करती है। कुण्डलिनी शक्ति जागने पर व्यक्ति के प्राण, मन और बुद्धि को अपने स्वायत्त कर लेती है। अतः शक्ति—पात दीक्षा के बाद व्यक्ति को अनेक प्रकार के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विषय की सूक्ष्म समझ होने लगती है। इसी प्रकार की क्रिया स्वामी विवेकानन्द को स्वामी रामकृष्ण द्वारा प्रथमतः प्राप्त हुआ था।

शक्तिपात के प्रसंग तथा उससे व्यक्ति में होने वाले अनुभूतियों के प्रसंग पौराणिक ग्रन्थों में जगह—जगह वर्णित है। श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन को विराट रूप दर्शन आदि कई कलाकारों की रचनाधर्मिता का विषय मिथकों और प्रतीकों के रूप में उजागर हुआ है। कलावती दीक्षा के परिणाम स्वरूप व्यक्ति को अन्तर्ज्योति दर्शन, नाद, दिव्यगंध, दिव्य रूपों का साक्षात्कार होने लगता है। सूक्ष्म जगत सम्बन्धी भाव समाधि जनित दृश्य जो देव—देवियों, गंधर्वों यक्षों से संबंधित तथा लोक—लोकान्तर के अद्‌भुत दृश्य अनुभव में आते हैं। उच्चतर अवस्थाओं में जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति तुर्य के प्रतीक रूप ध्यान में दीखने वाली रक्ताभ, श्वेत, कृष्ण व नील ज्योतियों के बोध के साथ ही उसे **'चितिः स्वतंत्रता विश्वसिद्धि हेतुः'** अर्थात चिति वह है जो अपनी स्वतंत्रता से जगत रचती है इसका पूर्ण ज्ञान होता है। चिति ही कुण्डलिनी शक्ति है।

इस दृष्टिकोण से कला का उद्‌भव स्रोत कलाकार की चिति सामर्थ्य पर निर्भर करता है। चित् और चिति के स्वरूप को समझे बिना भारतीय कला कृतियाँ कैसे अस्तित्व में आयीं इसका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। योग और तंत्र में बिन्दु, नाद और कला तत्व पर प्रकाश डाला गया है। बिन्दु और नाद ही आगे चलकर स्थूल रूप में साहित्य सृजन, नृत्य स्पन्दनात्मक और बिन्दु रूपात्मक पृष्ठभूमि पैदा करते हैं। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि धर्म, कला और साहित्य अभ्यान्तरिक रूप से जुड़े हुए हैं तथा इनकी अखण्ड परम्परा वैदिक काल से ही चली आ रही है।

अभी कला के इतिहास में इस विषयवस्तु का सचित्र अध्ययन सम्यक् रूप से नहीं किया गया है कहीं—कहीं आन्तरिक अनुभूति के अभाव में इतिहासकारों ने कोरी कल्पना का सहारा लिया है। जैसे देव मूर्तियों अथवा बौद्ध मूर्तियों के चित्र में सिर के पीछे बनाया गया आभा मण्डल बाहरी संस्कृतियों से लिया गया बताया गया है, जो कि हमारी दृष्टि से तथ्य से परे है, क्योंकि त्राटक अथवा मूर्धा—ज्योति प्रकट होने पर साधक को सहज ही सभी जीवित प्राणियों एवं वनस्पतियों में भी उनके विभव के अनुसार आभा मण्डल दिखाई पड़ता है। इस विज्ञान का वर्णन योग सम्बन्धी ग्रन्थों में विस्तार से किया गया है।

भारतीय कला तत्वज्ञान, धर्म और संस्कृति तीनों का समन्वित रूप प्रकट करता है। यह हमारा सौभाग्य है कि ऐसी सामग्रियाँ आज भी देश में सुरक्षित हैं, जो भारतीय कला के प्रभाव को दिग्दर्शित करती हैं। उन सभी को सिद्धयोग की परिभाषा के अन्तर्गत लेकर गवेषणा करना जरूरी है, क्योंकि अध्यात्म और कला की सामग्री वेद, पुराण, काव्य त्रिपिटक, आगम आदि भारतीय वांगमय में सहधर्मिता के साथ पायी जाती है।

अध्यात्म सम्बन्धित ग्रन्थों व साधन सम्पन्न संतों व योगियों के जीवन चरित्र को पढ़ने पर सहज ही ज्ञात होता है कि इनमें सौन्दर्य बोध अधिक गहराई से पाया जाता है। आधुनिक काल के अनेक संतों ने कला के प्रति अपने आध्यात्मिक अनुभव के आधार पर बड़े मौलिक विचार दिये हैं। योगिराज श्री चन्द्रमोहन, स्वामी रामदास, आचार्य रजनीश आदि—आदि कुछ प्रमुख नाम उदाहरण के रूप में हमने निर्देशित किया है। ''Swami Ramdas Speaks'' नाम पुस्तक में उनसे पूछे गये प्रश्न Are there any relation between art and mystic experiences ? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने जो कहा वह उन्हीं के शब्दों में ''When they stand

before the vastness of a land scape, the greenness of forest, the Scintillating expanse of the blue water of the ocean, the golden hue of the sunrise and sunset, they go into a trance and feel the hallowed presence of the most high. In ecstasy they pour out their hearts in celestial rhapsodies and songs, they love solitudes where they converse with God. For instance the painter saints have in their pictures brought out the ethereal beauty of their adored and chosen ideals.

If you make use of the divine gifts of art and music for the sheer gain of money, name & fame, you are doing wrong. So it entirely depends upon you, how you use your talents. You must strive to reveal the inner beauty of the spirit in your hearts. So saints song in rapture the glories of God. तात्पर्य यह कि अभ्यान्तर से जुटे हुए लोग अन्तर संवेदनाओं और चिति प्रसाद से प्रभावित होकर के जब रचनाधर्मिता अपनाते है तो ऐसी रचनाएं कृतियाँ कालजयी हुआ करती है। यह अजन्ता, एलोरा व अनेक मंदिरों चैत्यों आदि की कलाओं में दृष्टव्य है।

एक दूसरा भी पक्ष विचारणीय है। क्या कला को माध्यम बना करके आध्यात्मिक जगत में प्रवेश पाया जा सकता है या नहीं ? इस संदर्भ में श्री रामकृष्ण परमहंस के बाल्यकाल के जीवन चरित्र की एक घटना का वर्णन करना ही पर्याप्त होगा। आध्यात्मिक रूप से जाग्रत महापुरुष के उम्र और उनकी कर्तव्य का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं दिखायी पड़ता है। श्री रामकृष्ण को भाव तन्मयता बचपन से ही प्राप्त थी। एक छोटी सी घटना उनकी मनोवृत्ति का सहज ही परिचय देती है। घटना इस प्रकार है— उनके गाँव का कुम्हार शिव, दुर्गा आदि देवताओं की मूर्तियाँ बना रहा था, उन प्रतिमाओं को देखकर गदाधर एकदम से बोल पड़े "अरे यह क्या किया है ? क्या देवी देवताओं की आँखें ऐसी होती है ? देखो आँखे ऐसी होनी चाहिए ऐसा कह करके भौंहे व आँखों का आकार कैसा हो, दृष्टि कैसी होने से आँखों में दैवीय शक्ति करूणा, अन्तर्मुखी भाव, आनन्द आदि गुण एकत्रित होकर मूर्ति में सजीवता का भास होता है आदि–आदि विषय में उस कुम्हार को प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करा दी। इसी प्रकार मित्रों के साथ खेलते–खेलते उन्हें जब किसी देवी–देवता की पूजा करने की इच्छा होती तो वे तत्काल मृत्तिका की ऐसी सुन्दर मूर्ति तैयार कर डालते थे कि देखने वालों को वह मूर्ति अति चतुर कारीगर की बनायी हुई मालूम पड़ती थी।

निष्कर्षत: यह कहना ठीक ही होगा कि वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल की कलाओं पर अन्तदृष्य सम्पन्न महापुरुषों की अहैतुक सहायता परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सदैव मिलता रहा है।

***

सन्दर्भ

1. अग्रवाल वासुदेव शरण, 1970, भारतीय कला वाराणसी।
2. कुमार स्वामी ए०के०, 1969, इन्ट्रोडक्शन टू इण्डियन आर्ट, मुंशीराम मनोहर लाल, दिल्ली।
3. योगिराज श्री चन्द्रमोहन, 1984, योग सिद्धान्त, श्री सिद्धगुरु योग प्रशिक्षण केन्द्र संभाई, आगरा।
4. स्वामी मुक्तानन्द परमहंस, 1972, चित्शक्ति विलास श्री गुरुदेव आश्रम, गणेशपुरी थाना महाराष्ट्र।
5. स्वामी रामदास, 1957, Ramdas Speaks, Bhartiya Vidya Bhawan, Bombay.

सिद्धयोग

लेखक—स्वामी पुरुषोत्तम तीर्थ

एक समय सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने देवादिदेव महादेव से प्रश्न किया—

सर्वे जीवाः सुखैर्दुःखैर्मायाजालेन वेष्टिताः।
तेषां मुक्तिः कथं देव कृपया वद शंकर॥
सर्वसिद्धिकरं मार्गं मायाजालनिकृन्तनम्।
जन्ममृत्युजराव्याधिनाशनं सुखदं वद॥

(योगशिखोपनिषद् १/१—२)

'हे शंकर ! सब जीव सुख—दुःखरूप मायाजाल से घिरे हुए हैं। हे देव ! कृपया मुझसे यह कहिये कि इनकी मुक्ति किस प्रकार हो सकती है ? ऐसा एक उपाय बतलाइये जिससे सब सिद्धियाँ प्राप्त हों, मायाजाल कट जाय और जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि का नाश हो जाय।'

इसके उत्तर में भगवान् महादेव ने विष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्मा से कहा—

नानामार्गैस्तु दुष्प्रापं कैवल्यं परमं पदम्।
सिद्धिमार्गेण लभते नान्यथा पद्मसम्भव॥ (योगशिखोप० १/३—४)

'हे पद्मसम्भव ! कैवल्यरूप परम पद की प्राप्ति के अनेक उपाय कहे गये हैं; किन्तु उन समस्त उपायों से उसे प्राप्त करना सहज नहीं। एकमात्र सिद्धिमार्ग के द्वारा ही कैवल्य—पद आसानी से प्राप्त होता है। अन्य प्रकार से नहीं प्राप्त होता।' कैवल्य—प्राप्ति ही मानव—जीवन का उद्देश्य है। कैवल्य—मुक्ति होने पर ही दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति होती है। दुःख नष्ट हो जाने पर पुनः उसकी उत्पत्ति न होने को ही दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति कहते हैं। कैवल्य या मोक्ष प्राप्त होने पर जीव को पुनः जन्म—मृत्यु—जरा—व्याधिजनित दुःखों का भोग नहीं करना पड़ता। इसे प्राप्त करने का सहज पथ सिद्धिमार्ग या सिद्धयोग है।

यह सिद्धिमार्ग क्या है, यहाँ इस बात का विशदरूप से वर्णन करना आवश्यक है। जिस पथ से बिना कष्ट के योग प्राप्त होता हो, उसी पथ को सिद्धिमार्ग कहते हैं। योग रूप सिद्धि प्राप्त करने का पथ सुषुम्ना नाड़ी है; जब इस नाड़ी से प्राणवायु प्रवाहित होकर ब्रह्मरन्ध्र में जाकर स्थित होता है तब साधक को जीव—ब्रह्मैक्य—ज्ञानरूप योग प्राप्त होता है। सर्वप्रथम गुरुद्वारा शक्ति का संचार होने पर कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है; और उसके बाद क्रमोन्नति के द्वारा योगलाभ होता है। जिस तरह तुम्हें बरतन, लकड़ी, जल और अग्नि इत्यादि किसी चीज को परिश्रम करके जुटाना नहीं पड़ता, केवल दाता की कृपा से ही उसके घर में तैयार अन्न से ही तुम्हारी क्षुधा शान्त हो जाती है, उसी तरह तुम्हें परिश्रम करके सब योगों की आधारस्वरूपा मूलाधारस्थिता कुण्डलिनी—शक्ति को जाग्रत करने के लिए योगशास्त्रोक्त आसन, मुद्रा और प्राणायामादि कुछ भी अस्वाभाविक ढंग से अनुष्ठान करने की जरूरत नहीं, केवल गुरुशक्ति के प्रभाव से ही कुण्डलिनी—शक्ति के जाग्रत हो जाने से स्वाभाविक रूप में योगमार्ग प्राप्त हो जाता है। इसी को 'सहज कर्म' कहा गया है। स्वभाव से जो होता है, वही वास्तव में सहज

है। स्वाभाविक और अस्वाभाविक उपाय अत्यन्त कष्टसाध्य तथा विघ्नसंकुल है। स्वाभाविक से विपरीत ही अस्वाभाविक है। जो स्वाभाविक है, अर्थात् जो स्वभावतः होता है, वही अनायाससाध्य और सुखद है; तथा उसमें किसी तरह की विपत्ति की भी सम्भावना नहीं। देखो, जब स्वभावतः हमें निद्रा, क्षुधा और मल मूत्रादि का वेग होता है तब सो जाने, भोजन कर लेने और मलमूत्रादि त्याग देने से शारीरिक स्वस्थता तथा मानसिक आनन्द का अनुभव होता है। किन्तु निद्रा की इच्छा न मालूम होने पर भी जबर्दस्ती सो रहने से सुषुप्ति के स्थान में स्वप्न आया करता है और उससे शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता का अनुभव होता है। भूख नहीं है, फिर भी भोजन कर लिया, तो उससे अजीर्णतादि दोष के कारण शरीर में रोग होने की सम्भावना रहती है। भूख न रहने पर भोजन करने से वह उतना रुचिकर भी नहीं मालूम होता। मलका वेग नहीं हुआ, फिर भी काँखकर मल त्याग किया, इससे भविष्य में गुह्य रोगों के उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है; किन्तु वेग होने के बाद मल त्याग करने पर शारीरिक और मानसिक आराम मालूम होता है। उसी तरह अन्तःकरण में स्वाभाविक रूप से आसन, मुद्रा और प्राणायामादि करने की इच्छा होने पर और उसके अनुसार क्रिया करने पर वह सहज और शान्तिप्रद हो जाती है। स्वभाव से ही जो हो जाता है, उसमें बाधा डालने पर अधिक अनिष्ट की सम्भावना रहती है। जैसे, शोक में जिस समय रुलाई आती है, उस समय उसमें बाधा उपस्थित होने पर हृदय में भयानक चोट लगती है; किन्तु रो लेने पर शरीर और मन हल्का मालूम होता है। मल मूत्रादि का वेग होने पर उसे रोक लेने से दुःख होता है और रोग उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है; किन्तु उसका त्याग करते ही आराम मिलता है। उसी तरह गुरुशक्ति के प्रभाव से स्वभावतः जो आसन, मुद्रा और प्राणायाम आदि तथा नाना प्रकार से अंगसंचालन आदि करने की इच्छा होती है, उसमें उस समय बाधा डालने पर मानसिक अशान्ति मालूम होती है और शरीर को भी अच्छा नहीं मालूम होता।

जिस तरह वायु, पित्त और कफ इन तीनों के स्वभाव में विषमता होने पर वैद्य के पास जाना पड़ता है और वैद्य के बतलाये हुए औषध, पथ्य का व्यवहार करके स्वभाव की सहायता करने पर शरीर स्वभावतः ही नीरोग हो जाता है, उसी तरह सद्गुरु की कृपा से शक्ति संचार के द्वारा सिद्धिमार्ग प्राप्त होने पर एकमात्र गुरूपदिष्ट मन्त्रजप या ध्यान के द्वारा ही स्वभावतः आसन, मुद्रा, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान इत्यादि सब योगांक अनायास साधित हो जाते हैं, इसके लिये विशेष परिश्रम करने या चेष्टा करने की आवश्यकता नहीं होती, अथवा गुरु से इन सब आसन, मुद्रा और प्राणायाम आदि का स्वतन्त्र रूप से उपदेश लेने की भी जरूरत नहीं होती।

इसी पथ से क्रमशः अग्रसर होते–होते साधक शीघ्र ही योगसिद्धि प्राप्त करके कृतार्थ और धन्य हो जाता है। इस उपाय से स्वभावतः योगांगादि साधन क्रम से जीव और ब्रह्म का ऐक्यज्ञान अथवा अखण्ड–चैतन्यानुभूति होती है। और इसी को **सिद्धिमार्ग** या **सिद्धयोग** कहते है। परन्तु यह शक्ति सम्पन्न सद्गुरु की कृपा प्राप्त होने पर ही सम्भव है।

***

योग में शब्द-योग

—अशोक दिग्विजय—

त्रियोग—कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग।

योगचतुष्टय—हठयोग, लययोग, मन्त्रयोग और राजयोग।

द्विविध निष्ठा—सांख्ययोग और कर्मयोग।

द्विविध प्रकृति—परा और अपरा।

त्रिविध पुरुष—क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम (जगत्, जीव और भगवान्)।

वेदान्त के चार महावाक्य—अहं ब्रह्मास्मि, तत्वमसि, प्रज्ञानं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म।

सप्तज्ञानभूमिका—शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थाभाविनी, तुर्यगा।

साधन चतुष्टय—नित्यानित्यवस्तुविवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति (शम, दम , तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा, समाधान), मुमुक्षुत्व।

त्रिविध नरकद्वार—काम, क्रोध, लोभ।

त्रिविध ज्ञानद्वार—श्रद्धा, तत्परता, इन्द्रियसंयम।

भक्ति के चार महावाक्य—कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्, मत्तः परतरं नान्यत्, ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्, मामेकं शरणं व्रज।

द्विविधा भक्ति—अपरा या गौणी, परा या रागानुगा।

नवधा भक्ति—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन:

पञ्चभाव—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर।

अष्ट सात्विक भाव—स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभंग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय।

प्रेम की तीन अवस्थाएँ—पूर्वराग, मिलन और वियोग।

त्रिविध विरह—भूत, वर्तमान और भावी।

विरह की दश दशाएँ—चिन्ता, जागरण, उद्वेग, कृशता, मलिनता, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, मोह और मृत्यु।

चतुर्विध भाव—भावोदय, भावसन्धि, भावशाबल्य और भावशान्ति।

द्विविध महाभाव—रूढ़ और अधिरूढ़।

द्विविध अधिरूढ़ महाभाव—मोदन और मादन (या मोहन)।

आसन—चौरासी या एक सौ आठ। प्रधान दो—पद्मासन और स्वस्तिकासन।

मुद्रा और बन्ध—अनेक हैं। परन्तु पचीस मुख्य हैं। उनके नाम हैं—महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयानबन्ध, जालन्धरबन्ध, मूलबन्ध, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, विपरीतकरणी, योनि, वज्रोली, शक्तिचालनी, तड़ागी, माण्डवी, शाम्भवी, अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातंगी, भुजंगिनी और पाँच धारणाएँ (पार्थिव, आम्भसी, वैश्वानरी, वायवी और आकाशी)।

षट्कर्म—धोति, गजकरणी, वस्ति, नौलि, नेति और कपालभाति। कोई-कोई त्राटकसमेत सात मानते हैं।

प्राणायाम—पूरक, कुम्भक और रेचक।

चतुर्विध पातंजलोक्त प्राणायाम—आभ्यन्तर, बाह्य और दो प्रकार के केवल प्राणायाम।

अष्टविध प्राणायाम—सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लाविनी। कुछ लोग अनुलोम-विलोम को जोड़कर नौ प्रकार मानते हैं।

दैनिक श्वास—२१६००।

योगसाधन में तीन प्रधान नाड़ियाँ—इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना।

दश वायु—प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय।

योग के षट्चक्र—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा।

योग के नौ चक्र—उपर्युक्त सात और आठवाँ तालु में ललनाचक्र और नवाँ ब्रह्मरन्ध्र में गुरुचक्र।

षोडश आधार—१ दहिने पैर का अंगूठा, २ गुल्फ, ३ गुदा, ४ लिंग, ५ नाभि, ६ हृदय, ७ कण्ठकूप, ८ तालुमूल, ९ जिह्वामूल, १० दन्तमूल, ११ नासिकाग्र, १२ भ्रूमध्य, १३ नेत्रमण्डल, १४ ललाट, १५ मस्तक और १६ सहस्रार।

तीन ग्रन्थि—ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि।

त्रिमार्ग—पिपीलिका—मार्ग, दार्दुर—मार्ग और विहंगमार्ग।

त्रिशक्ति—ऊर्ध्वशक्ति (कण्ठ में), अधःशक्ति (गुदा में) और मध्यशक्ति (नाभि में)।

पञ्चभूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश।

पञ्चकाश—आकाश, महाकाश, पराकाश, तत्वाकाश और सूर्याकाश।

वर्ण—पचास ('अ' से 'ह' तक)।

त्रिविध मन्त्र—पुं, स्त्री, क्लीव।

चतुर्विध वाणी—परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी।

योग के आठ अंग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

नियम—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान।

संयम—धारणा, ध्यान और समाधि।

क्रियायोग—तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान।

द्विविध ध्यान—भेदभाव से और अभेदभाव से।

द्विविध समाधि—सम्प्रज्ञात या सबीज और असम्प्रज्ञात या निर्बीज।

असम्प्रज्ञात समाधि के चार भेद—वितर्कानुगम, विचारानुगम, आनन्दानुगम और अस्मितानुगम।

असम्प्रज्ञात के दो भेद—भवप्रत्यय, उपायप्रत्यय।

पञ्चवृत्ति—मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध।

पञ्चक्लेश—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश।

सप्तसाधन—शोधन, दृढ़ता, स्थैर्य, धैर्य, लाघव, प्रत्यक्ष और निर्लिप्तता।

योग के विघ्न—व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, विषयतृष्णा, भ्रान्ति, फलमें सन्देह, चित्त की अस्थिरता, दुःख, मन की खराबी, देह की चंचलता, अनियमित श्वास—प्रश्वास, अनियमित और उत्तेजक आहार, अनियमित निद्रा, ब्रह्मचर्य का नाश, नकली गुरु का शिष्यत्व, सच्चे गुरु का अपमान, भगवान में अविश्वास, सिद्धियों की चाह, अल्प सिद्धि में ही पूर्ण सफलता मानना, विषयानन्द, पूजा करवाना, गुरु बनना, दम्भ करना।

अष्ट महासिद्धि—अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और यत्रकामावसायित्व। कुछ लोग इनमें 'गरिमा' जोड़कर इनकी संख्या ९ कर देते हैं।

चतुर्विध साधक—मृदु, मध्य, अधिमात्र और अधिमात्रतम।

चार अवस्थाएँ—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया।

* * *

गुरू कैसा हो ?

संसार का कोई भी कार्य अनुभवी गुरू या जानकार पथप्रदर्शक के बिना सहज ही सफल नहीं होता। केवल पुस्तकें पढ़ने से काम नहीं चलता; जो मनुष्य इस काम को करके सफल हो; उसकी सलाह आवश्यक होती है और कठिन कार्य हो तो कुछ दिन उसके पास रहकर विनय और सेवा से उसे प्रसन्न रखते हुए उससे सीखना पड़ता है। जब लौकिक कार्यों का यह हाल है तब आध्यात्मिक साधन में तो गुरू की बड़ी ही आवश्यकता है। वहाँ तो पद–पद पर गिरने का डर है। इसलिए प्रत्येक साधन को अनुभवी गुरू के शरण होकर आध्यात्म साधना करनी चाहिये। भारतीय साधना में गुरू परम्परा और गुरूकुलों का बहुत ऊँचा स्थान है, क्योंकि गुरू बिना ज्ञान नहीं होता। गुरू ही आँखें खोलकर, हाथ में मशाल लेकर, विघ्नों से बचाकर शिष्य को लक्ष्य स्थान तक सुख से पहुँचाता है। गुरू और ईश्वर में कोई भेद नहीं, प्रत्युत शिष्य के लिए तो गुरू ईश्वर से भी बढ़कर है। यही गुरु तत्व है। गुरु में इतने गुण अवश्य होने चाहिये—

स्वभाव शुद्ध हो, जितेन्द्रिय हो, धन का लालच जिसे हो ही नहीं, वेदशास्त्रों का ज्ञाता हो, सत्य तत्व को प्राप्त कर चुका हो, परोपकारी हो, दयालु हो, नित्य जप–तपादि साधनों को स्वयं (चाहे लोक संग्रहार्थ हो) करता हो, सत्यवादी हो, शान्ति प्रिय हो, योग विद्या में निपुण हो, जिसमें शिष्य के पाप नाश करने की शक्ति हो, जो भगवान का भक्त हो, अव्यसनी हो, प्रियभाषी हो, निष्कपट हो, निर्भय हो, पापों से बिल्कुल परे हो, सदाचारी हो सादगी से रहता हो, धर्म प्रेमी हो, जीवमात्र का सहृद् हो और शिष्य को पुत्र से बढ़कर प्यार करता हो।

उक्त गुणों के विपरीत संस्कार हीन, अभिमानी, व्यसनी बाहरी चमत्कार दिखाकर लोगों का चित्र हरने वाला, धर्महीन, सन्यासी होकर त्यागी न हो और गृहस्थ होकर गृहणी रहित हो ऐसे व्यक्ति को कदापि गुरू नहीं बनाना चाहिये।

इससे यह नहीं समझना चाहिये कि आजकल सद्गुरू हैं ही नहीं, उत्कट इच्छा और सच्ची चाह होने पर संसार सागर से तारने वाले सद्गुरु अवश्य ही मिलते हैं।

SIDDHYOG Regd. No. L. AG. 008

दिसम्बर, 1999

PRINTED MATTER

Book-Post

श्री ------------------------------------

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र

सवांई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

नारुंतुदः स्यान्न नृशंसवादी न हीनतः परमभ्याददीत।
ययास्य वाचा पर उद्विजेत न तां वदेद् रुशती पापलोक्याम्।।

(महाभारत अनुशासन पर्व ४/३१)

दूसरों के मर्म पर आघात न करें, क्रूरतापूर्ण बात न बोलें तथा औरों को नीचा न दिखायें। जिसके कहने से दूसरों को उद्वेग होता हो, ऐसी रुखाई से भरी हुई बात पापियों के लोकों में ले जाने वाली होती हैं, अतः वैसी बात कभी न बोलें।

प्रकाशक एवं मुद्रक—विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई, (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326